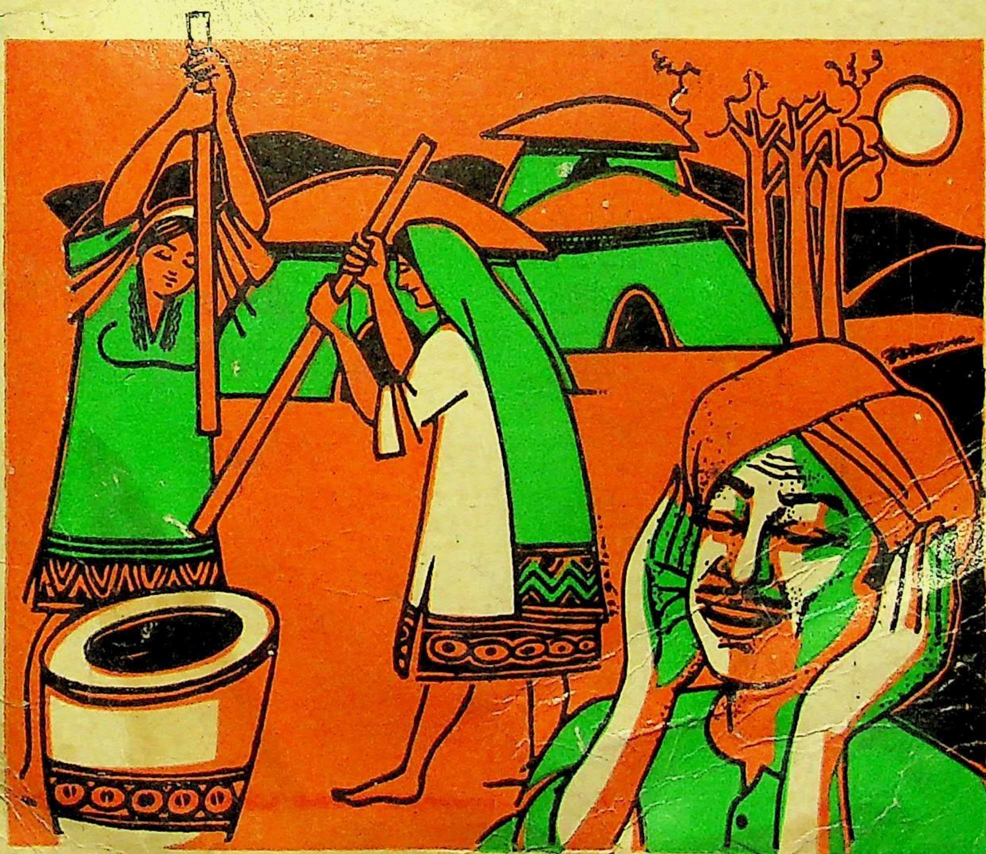
हिन्दी

शीराज़ा



जे. एण्ड के. अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

सितम्बर १९७५

शीराज़ा
हिन्दी

●

प्रमुख सम्पादक :
अख़्तर महीउद्दीन

सम्पादक :
रमेश मेहता

●

जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

वर्ष : ११ सितम्बर १९७५ अंक २

सम्पादकीय पत्र व्यवहार

रमेश मेहता

सम्पादक

शीराज़ा हिन्दी

जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़,
नहरू मार्ग, जम्मू

फोन नं० : ५०४०

सचिव द्वारा जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट,
कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू के लिए प्रकाशित
तथा अमर आर्ट प्रेस, मोती बाज़ार, जम्मू में मुद्रित

वार्षिक : आठ रुपये प्रत्यंक : दो रुपये

शीराज़ा हिन्दी

वर्ष : ११ सितम्बर १९७५ अंक : २

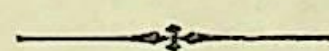
अनुक्रमणिका

हास्य-व्यंग्य

कहानियां

कविताएं

स्थायी स्तम्भ



अपनी बात

पिछले कुछ दिनों से हिन्दी साहित्य में विविध विधाओं से जुड़ी चर्चा एक विशेष मोड़ पर आकर रुक गई है। इनके इस 'मोड़ विशेष' पर आकर रुक जाने के अनेक कारण हो सकते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि इस ठहराव को किसी ने भी लक्षित नहीं किया और यदि किसी को इस ठहराव ने कोंचा भी तो उसने इसको लेकर जुबान खोलना मुनासिब नहीं समझा। विचार कविता और एंटीनाटक वगैरह वालों ने इस ठहराव को लेकर बातचीत की शुरुआत करना चाही थी किन्तु उनका यह प्रयास 'मौनी बाबाओं' को उद्वेलित करने में सक्षम नहीं हो सका। यह सारी स्थितियां अनेक प्रश्नों को उजागर करती हैं। एक प्रमुख प्रश्न यह हो सकता है कि पिछली अर्द्ध-शताब्दी से जिस हिन्दी साहित्य में रचना के स्थान पर 'वाद' या 'आंदोलन' का सिक्का चलता रहा है और इस सबको लेकर विभिन्न खेमों में खूब खींचतान होती रही है, उसी हिन्दी साहित्य में आज इन विधाओं को लेकर बातचीत की शुरुआत करने वाला क्या कोई नहीं है? यदि वह 'कोई' नहीं है तो क्यों नहीं है? यह सब प्रश्न आज हिन्दी साहित्य के प्रत्येक अध्येता के अन्तर को मथ रहे हैं।

पिछले कुछ बरसों से नई कविता और नई कहानी ने बहुत कुछ तोड़ा है लेकिन थोड़ा बहुत जोड़ा भी है। यह बात सचमुच विस्मयकारी ही है कि किसी भी नए वाद या आंदोलन का नाम लिए बिना इन विधाओं में आम आदमी की स्थिति का चित्रण मॉनोटॉनी की हद तक आम हो चला था। आम आदमी का रोना रोने की प्रवृत्ति इस हद तक बढ़ी कि हर लेखक व्यवस्था को गाली देना अपना परम कर्त्तव्य मानने लगा और इस होड़ का परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक कवि, कहानीकार और नाटककार अपने को व्यवस्था का कट्टर विरोधी मनवाने के लिए जी तोड़ कोशिश कर रहा था। इस प्रक्रिया से गुज़रते हुए वह राष्ट्र के गौरव और सम्मान के सभी प्रतीकों

को हेच मानने लगा था और इनकी भर्त्सना करने में एक अजीब प्रकार के आत्म-गौरव का अनुभव करता था। स्थिति की विडम्बना और भी मुखर हो उठी जब इन लेखकों के लिए व्यवस्था और सरकार समानार्थक शब्द बन गए। गोकि इस प्रकार के साहित्य को न तो किसी विशेष नाम से अभिहित किया गया और न ही इसे व्यापक स्तर पर चर्चित करने के साधन जुटाए गए लेकिन अपने अनजाने सब लोग यह मानने लगे थे कि समसामयिक साहित्यिक परिवेश में यदि ज़िन्दा रहना है तो व्यवस्था को नंगी गाली देना ही होगी। अनुशासन के लिए बनाई गई सभी सरकारी इकाइयों को प्रताड़ित करना ही होगा। यह भाव-धारा लेखकों और समीक्षकों के बीच हुए एक मौन समझौते का फल थी।

इन स्थितियों में कोई भी जागरूक पाठक यह सोचने के लिए विवश है कि भोगे हुए यथार्थ और प्रामाणिक अनुभूतियों की बात करने वाला साहित्य एकदम सतही क्योंकर हो गया? वाद-मुक्ति की बात करने वाला साहित्य 'व्यवस्था-विरोधी-वाद' क्यों बनता चला गया? क्यों आज का लेखक भावावेग-भरी उक्तियों से साहित्य को रुग्ण बना रहा है?

उपरोक्त प्रश्नों ने समय-समय पर मुझे आन्दोलित किया है। किन्तु हर बार चिन्तन करने की स्थिति से ऊपर मैं नहीं उठ पाया हूं। अतः मैं कह सकता हूं कि यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित हैं और शायद तब तक अनुत्तरित रहेंगे जब तक कि हम सब इनको लेकर बातचीत नहींकरेंगे। इस बातचीत की शुरुआत के लिए 'शीराज़ा हिन्दी' अपने सुधी पाठकों को आमन्त्रित करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष पर विशेष

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य में नारी-स्वातन्त्र्य के स्वर

—डॉ० ओम प्रकाश

'निर्मला' से लेकर 'गोदान' तक प्रेमचन्द का उपन्यास-साहित्य भारतीय नारी की करुण-कथा का चित्रपट है। 'मानसरोवर' में भी यहां-वहां नारी के मुस्काते अधरों एवं आंसू बहाते नयनों की भाव-प्रवण छवियाँ अंकित हैं। 'गोदान' में प्रेमचंद ने भारतीय समाज में नारी के सभी रूपों का मार्मिक उरेहन किया है। धनिया, मुनिया, रूपा, सोना, मालती, गोविंदी और वह अनाम वन्य युवती जिसके प्रति मेहता का सहज आकर्षण, मुक्त-प्रेम में विश्वास करने वाली मालती के हृदय में भी ईर्ष्या और द्वेष की मिश्रित भावना को जन्म दे जाता है—के माध्यम से नारी चरित्र का प्रत्येक कोण इस उपन्यास में अंकित है। भीतर से मधुमक्खी और बाहर से तितली—मालती जैसे पात्र के रचनाकार प्रेमचंद अपने समस्त प्रगतिशील विचारों के बावजूद नारी को पुरुष के समकक्ष स्वतन्त्रता देने के पक्ष में नहीं थे। उनके 'कायाकल्प' की मनोरमा सीता वनवास के संदर्भ में शंका प्रस्तुत करती है—"यह तो मैं जानती हूं कि स्त्री को पुरुष की आज्ञा माननी चाहिए। लेकिन क्या सभी दशाओं में?" स्पष्ट रूप से यह शंका नारी की संस्कार-गत उस भावना से प्रतिबंधित है जिसके अनुसार 'स्त्री को पुरुष की आज्ञा माननी चाहिए'। गोदान के प्रोफेसर रंगभूमि की सोफ़ी जिस आदर्श की ओर प्रेरित है, वह उच्छृंखलता का न होकर संयम, साधना एवं तपस्या का है। गोदान के प्रोफेसर मेहता के आधुनिक चिन्तन का निचोड़ है—"मैं उन लोगों में नहीं हूं जो कहते हैं, स्त्री और पुरुष में समान शक्तियां हैं, समान प्रवृत्तियां हैं और उनमें कोई विभिन्नता नहीं है। इससे भयंकर असत्य की मैं कल्पना नहीं कर सकता।" किन्तु इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि निर्मला, सुमन, जालपा और धनिया जैसे पात्रों की रचना करके

प्रेमचंद ने नारी के प्रति सहानुभूति के दृष्टिकोण का प्रसार किया। मालती, विवाह को वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिए हानिकर बता कर, उस प्रवृत्ति का आरंभ करती है जो बाद के अनेक कथाकारों में परिलक्षित होती है।

हिन्दी साहित्य में ऐसे नारी-पात्रों की रचना निरन्तर की जाती रही है जो जीवन के यथार्थ से उभर कर मानव का हृदय झकझोर देते हैं। उन पात्रों की सारी कमजोरियां, पतन के सारे धरातल परिस्थितियों के कारण उपजी मजबूरियों की अनिवार्य परिणति होते हैं। इस तकनीक से लेखक उन नारियों को उदात्त भित्तियों पर स्थित कर देता है। नागार्जुन की 'रतिनाथ की चाची' वैधव्य में देवर से गर्भ धारण करके, पुन: भ्रूणहत्या करवा कर, जीवन के एकमात्र संबल—अपने पुत्र से पिटती है। लेकिन पाठक की दृष्टि में कहीं भी नहीं गिरती। उसका निम्नांकित कथन मर्म का स्पर्श करता हुआ एक कड़वी सच्चाई समाज के समक्ष रख देता है—"किसी भी युग में स्त्री को अमृत पीने का सुयोग नहीं मिला। पुरुष को अमृत पिला कर स्वयं वह विषपान ही करती आई है।" सामाजिक नियमों से आक्रांत ये आर्त्त नारी-पात्र शहरों, ग्रामों और कबीलों में फैले हुए हैं। नारी को कितने अधिकार मिलें, मिलें या न मिलें इत्यादि प्रश्न सभी स्तरों पर एक जैसे हैं। नि:संदेह, जिन परिस्थितियों से ये प्रश्न उभरते हैं, वे परिवेश के अनुसार भिन्न हैं किन्तु उनका सार भिन्न नहीं है। पुरुष की वृत्ति सभी धरातलों पर एक है। राजेन्द्र अवस्थी के 'जंगल के फूल' की नायिका महुआ दुखी है कि उसकी सखी जलिया के प्रेमी की सगाई किसी दूसरी लड़की से हो गयी है। लेकिन वह जानती है कि "हम औरत जात कर ही क्या सकती हैं। मरदों ने मिल कर अपनी मरजी के कानून बना लिये हैं।" पुरुष, विवाह के बाद भी, दूसरी नारी से सम्बन्ध रख लेता है। लेकिन यहां, सभ्य समाज में, सुहाग और पतिव्रत से जुड़े आग्रह एवं संस्कार नारी के विवाहोपरांत प्रणय—सम्बन्धों पर अंकुश रख देते हैं। बस्तर के आदिवासियों के जीवन पर आधारित 'जंगल के फूल' में झालरसिंह कहता है—"मोटियारी बिहाव के बाद ऐसा नहीं कर सकती। वह जिसे तन देगी उसी की होकर उसे रहना होगा। तन और मन का भेद सिर्फ़ हमारे लिए है। मैं तो कहता हूं कि औरत का मन होता ही नहीं." उपर्युक्त कथन सामान्य पुरुष का स्वभाविक कथन है। इस धारणा ने नारी जीवन को इतना कुंठित कर दिया है कि नारी अपने लिए एक स्वस्थ व्यक्तित्व जुटा ही नहीं पाती। नरेश मेहता के नाटक 'खंडित यात्राएं' की (प्रोफ़ेसर) नंदिता का व्यग्य भी महुआ और जलिया की वेदना से भिन्न मानसिकता का परिचय नहीं देता। नंदिता का कहना है—"मेरा तो ख्याल है कि नारी के पास केवल तन होता है और शवदाह के बाद नारी का तो हिसाब किताब साफ हो जाता है।" यह आत्म-बोध पढ़ी-लिखी मेधावी नारी का ही नहीं है। अमृतलाल नागर के बूंद और समुद्र की 'बड़ी बहू' इसी द्वन्द्व में अपना जीवन तबाह कर लेती है। उसने सहज, सरल भाव से

स्वीकारा था– "मैं उनको बहुत लौ करती हूं······वो भी मुझसे बहुत लौ ('लव'-प्यार) करते हैं पर······वो······वो मेरे मन के पति नहीं बन पाते। देखो ऐसी बात करते भी पाप लगता है पर······।" यह 'पाप' और 'पर' ही उन विरोधी रेखाओं का निर्माण करते हैं जो नारी को वर्जना और मुक्ति के आग्रहों के बीच विभाजित किए रहती हैं। इसी उपन्यास की एक पात्र है—चित्रा राजदान। वह अपने अन्तर्द्वन्द्व को लील चुकी है इसीलिए कह सकती है—"मार्च में इनकी बर्थ डे आती है। तुम जानते हो, इन्हें क्या प्रेजेंट कर रही हूं? अपने तमाम हस्बैंड्स के नाम और पतों का एल्बम।" पुरुष के "पौरुष" को इस प्रकार के चरित्र देखकर एक "शॉक ट्रीटमेंट" का अनुभव जरूर होता है। उनका फैसला सुनने के लिए, मेरे ख्याल में, पुरुष अभी तक तैयार नहीं है यद्यपि इनके मूल में पुरुष का अपना अनाचार ही है। चित्रा राजदान जैसा ही एक चरित्र है, दीप्ति खंडेलवाल की कहानी 'हव्वा' की नायिका का। वह सोचती है कि यदि पुरुष की ज़िन्दगी में कई औरतों का आना सहज है तो औरतों की ज़िन्दगी में कई पुरुषों का आना असहज क्यों? "औरत सदा मर्द के लिए ज़िन्दा रही है, पति के मरने पर वह लाश के साथ जलती रही है······यदि बच्चा नाजायज़ हो तो आत्महत्या औरत ही करती है······।" क्यों? नारी शरीर की क्या यही नियति है? इस सच्चे या झूठे संस्कार को क्या आज भी नारी अंधी, बहरी और गूंगी बनकर मान ले? अविवाहित और विवाहित जीवन की समग्र वर्जनाएं उसी के लिए क्यों? क्या उसकी अपनी कोई उमंगें नहीं? अपने व्यक्तित्व के लिए उसकी कोई मांग नहीं? क्या उसका अपना अलग अस्तित्व ही नहीं है?—ढेर सारे प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए आज नारी लालायित है। विवाह-पूर्व के यौन सम्बन्ध, अविवाहित मातृत्व जैसी समस्याओं पर आज नये सिरे से विचार करना वांछित ही नहीं, एक मजबूरी भी है। सुशील गुप्त की कहानी 'अभिशप्त' की सोनल अपने प्रेमी को यह कहने का साहस रखती है—"तुम्हारे साथ बिन ब्याहे रह लिया, टीनू की मां बन गयी तो मुझमें इतना साहस भी है कि उसे अपना बेटा कह पुकार सकूं।"

इस सारे विवेचन के बाद भी यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है कि नारी के शोषण का सही हल क्या है? क्या नारी कोशिश करके भी ममता, प्रेम, सेवा आदि के अपने संस्कारगत भाव बदल पाएगी? अज्ञेय के 'शेखर' की शशि अपने ऐसे पति से कुछ नहीं कह पाती जिसने उसे जीवन भर के लिए विकलांग बना दिया है। लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक 'अंधा कुंआ' की सूका उस प्रेमी इन्दर के साथ नहीं भागती जो उसे 'सुहाग' देना चाहता है। उस ग्रामीण का यह निष्कर्ष कितना कटु है कि मेरा सुहाग उस दिन लुट गया था जिस दिन मेरा विवाह हुआ था। अपने पति भगवनी और उसके घर के विषय में उसके विचार भी द्रष्टव्य हैं:

राजी — दीदी कुछ खा लो न। सच कोई कानों-कान नहीं जानेगा।

सूका —मैं खुद खाना ही नहीं चाहती। मुझे घर की हवा तक से घृणा है। मैं चाहती हूं कि यहां मैं सांस न लूं लेकिन (रो पड़ती है) ब्याह कर जब मैं इस घर में लाई गई, तब इस घर ने मुझे रखैल कहा, कचहारी से लौट कर जब मैं इस घर में आई तब इस घर ने मुझे भगैल कहा और जब इस घर में खींचकर लाई गयी, तब से यह काला घर मुझे चुड़ैल कह रहा है।

नारी स्वातन्त्र्य का एक स्वर जैनेन्द्र की सुनीता में भी उभरा था। लेकिन सुनीता की परंपरा की नारी एक विशेष प्रकार की अतिवादिता के चंगुल में कस गयी है। डॉ० रामविलास शर्मा जिन परिस्थितियों को साड़ी-जंपर-उतार स्थितियों का नाम देते हैं, वे नारी की स्वतन्त्रता के वास्तविक स्वर मुखर नहीं करतीं। 'क्यों फसें' (यशपाल) की हेना, तहाए हुए साड़ी, पेटीकोट, ब्लाउज़ बांह पर रखे······शरीर पर केवल अंगिया और तंग जांघिया पहने, आवरणहीन होकर, पुरुष को संतुष्ट भले ही कर गयी है; किन्तु उसकी यह दिशा नारी की स्वतन्त्रता के संदर्भ में गौरवपूर्ण नहीं कही जा सकती। एक चरित्र 'नदी के द्वीप' की रेखा का भी है। वह तुलियन झील पर भुवन को भोगती है और अपने को 'फुल्फिल्ड' समझती है। अपने गर्भ में भुवन के शिशु को सगर्व धारण करती है लेकिन गर्भपात करवाती है। वह उसी डाक्टर से विवाह करती है जो गर्भ की सफाई में उसका सहायक रहा है। तो भी उसके लिए समूचा पत्नीत्व मिथ्या है। प्रश्न यह है कि, इस सबके बाद रेखा के पास रहता क्या है? एक टूटा हुआ व्यक्तित्व—दिशाहीन, उद्देश्यहीन। वस्तुतः यह स्वर टूटन का है उस पूर्णता का नहीं जो स्वतंत्रता की अनिवार्य संगति मानी जानी चाहिए। व्यक्तित्व का केन्द्र से विलग होकर बिखर जाना एक बात है तथा अपने लिए एक सन्मानित, आत्मतोषी, स्वावलंबी वृत्त बना लेना दूसरी बात।

यशपाल के साहित्य में नारी-स्वातन्त्र्य के दो पहलुओं पर विशेष बल दिया गया है :

१—नारी आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी हो तथा २—विवाह की संस्था का उन्मूलन हो। यशपाल के प्रथम उपन्यास दादा कामरेड में ही हरीश घोषणा करता है—"विवाह का दमनकारी बन्धन दूर कर देने पर स्त्री-पुरुष अपनी स्वाभाविक अवस्था में रहेंगे।" 'अप्सरा के शाप' के अंत में मां मेनका के ये शब्द गूंजते रहते हैं—"व्रत तथा धर्म का प्रयोजन आत्मोत्थान है अथवा आत्म हनन?" उनके नवीनतम उपन्यास 'मेरी तेरी उसकी बात' में नरेन्द्र विवाह की अपनी फ़िलासफ़ी लच्छेदार भाषा में स्पष्ट करता है—"विवाह जीवन की पूर्णता के लिए आजीवन प्रेम का सम्बन्ध नहीं, मजबूरी है। युवक युवती की भेंट में प्राकृतिक उद्वेग से संतान का बोझ आ पड़ना······ शेष जीवन उस बोझ को निबाहने की मजबूरी। हमारी बिरादरी-समाज में पत्नी प्रेम नहीं विवशता में स्वामीभक्ति निबाहती है।"

नारी की स्वतन्त्रता में बाधक एक प्राकृतिक सत्य है। वह कोई व्यवसाय अपना कर आर्थिक दृष्टि से चाहे स्वतंत्र हो जाए, कानूनन सभी व्यवसायों के द्वार उसके लिए खुल जाएं, तो भी मातृत्व एक ऐसा कार्य है जहां उसी का एकाधिकार है। दूसरे शब्दों में यह एक ऐसी प्राकृतिक मजबूरी है जो उसी के हिस्से पड़ी है। स्थिति की कड़ुआहट उस नियम के कारण और भी बढ़ जाती है कि कानून से सन्तान पिता की होती है, माँ की नहीं। 'बूंद और समुद्र' की 'बड़ी' भी अपने ढंग से सही बात कहती है—"हम तो कहते हैं, दुनिया से शादी की रसम उठा दी जाये। इससे हम औरतों का ही नुक्सान होता है। धंधा पीटें, बच्चे जनें, मार खायें, सबके बोल-कुबोल सहें और फिर भी हमारी निगोड़ी कोई कदर नहीं।"

माँ, पत्नी, प्रेमिका, नगरवधू—कितने रूप हैं नारी के—सबके सब पुरुष के पोषक-तोषक। वारांगना का एक रूप यशपाल की दिव्या का है तो दूसरा मोहन राकेश की मल्लिका का। 'आषाढ़ का एक दिन' की नायिका, मल्लिका टूट कर विलोम के साथ रह कर जीवन-यापन कर रही है। एक अन्य वारांगना नागर के 'सुहाग के नूपुर' की माधवी है। वह अपना परिचय देती हुई कहती है—"मैं नारी हूं—मनुष्य-समाज का व्यथित अर्धांग।" पगली थी वह इसी लिए उसने कहा—"नारी के रूप में न्याय रो रहा है।"

नारी को सामाजिक न्याय मिले इसके लिए नारी और नर दोनों को अपने दृष्टिकोण बदलने होंगे। इन दृष्टिकोणों की परिचालन शक्तियां ओढ़ी हुई न होकर उसी भूमि से उपजी होनी चाहिएं जिस पर उन्हें रहना है। यशपाल के 'झूठासच' की तारा डॉ० नाथ के साथ विवाह करके ही सही गौरव प्राप्त करती है और लक्ष्मीनारायण लाल की रात की रानी की आधुनिकाएं कुंतल और सुन्दरम भी किसी सही समझौते का संकेत करती है। सुन्दरम ने विवाह से पहले कहा था—"पति के माने इज्जत मर्यादा नहीं······ बल्कि पति के अर्थ हैं मालिक, मालिक माने खुदा नहीं, गुलाम वाला मालिक।" लेकिन विवाह के पश्चात् 'सुंदरम' के कार्य कलाप में 'सुंदरम्' के तत्त्व की वृद्धि ही होती है और ऐसे सुंदरम् में ही सत्यम् तथा शिवम् का समन्वय भी हो सकता है। सही रास्ते की तलाश का अर्थ होना चाहिए अपने लिए, अपने रास्ते की तलाश। तभी हमारा चयन सही होगा। तभी कुंतल की पुष्प वाटिका में खजन और महर के गीत सुनाई देंगे।



'किन्तु अब'....

—मीना सिंह

रात बीतने के बाद सूरज अब भी उगता है,
किन्तु, जिस सूर्य गंध को सूंघने को—
बेताब थे हम वर्षों से—वह गंध उजाले में शरमाती है—
और आदी हो गये हम—
रात के बसियाये देहों की
भभकती गंधों के,
अब नहीं लगता—सूरज कभी उगा भी था !
कि रंगीन कागजी तितलियां
फैलाती हैं पंख फानूसी सूरज की—
रोशनी में।

और नीली आंखों के कमल—
खिलते हैं कांच की झील में,
लेकिन नहीं, उगने की समस्त सीमाओं से
बलात्कार करता गंधहीन सूरज उगता है
अब भी,

और स्वागत की मुद्रा में फैले हमारे हाथ
फैले रह जाते हैं—अनिर्णय की दशा में
(अनुमति दें या नहीं ?)
विचित्र पशोपेश का यह भयावह व्यूह।
सातवां द्वार तोड़ने का दुर्दमनीय साहस लिए कोई
अभिमन्यु क्षत-विक्षत नहीं
होना चाहता,

(क्योंकि नहीं सुनी है उसने मां के गर्भ में व्यूह भेदन की कथा;
क्योंकि आज द्रौपदी और अर्जुन एक नहीं अनेक हैं—
एक दूसरे से अपरिचित—भीड़ में गड्ड-मड्ड)
और पीले सूरज की रोशनी धीरे-धीरे फैलती जाती है ··
कैसा युद्ध स्थल है यह ?
कोई रथ नहीं, गांडीव नहीं, टैंक या बंदूक कुछ भी नहीं,
चारों ओर बस भीड़ ही भीड़, आदमी ही आदमी,
यानि स्त्री और पुरुष, बूढ़े और युवा, बच्चे और किशोर ··
युद्ध शायद बाहर नहीं, दिमाग के भीतर—

हो रहा है।

अनिर्णय की दशा में बढ़ती जाती है द्रौपदी की मांग,
और कांच की झीलों का बदोबस्त और अधिक
मुस्तैदी से किया जाता है, ताकि खिल सकें नीली आंखों के
कमल SSS SSS

इतना ही नहीं, उस अंधेरी सुरंग को पार करने के बाद
एक और की प्रत्याशा में
चौंधियाती, आंख चुराती मुद्राएं—
पार्श्व में खड़ी बस पहलू बदलती हैं
आकाश-गगा में विरोधों की हलचल—
कृष्ण की तटस्थ मुद्रा में आवेष्ठित होती जाती है
और घटती जाती चीर पर—
एकानमी मेजर का मद्दनजर रखते हुए
अपनी ही आष नपुंसुकता में अन्वेषित ठकुर सुहाती
काष्ठ मुद्राओं की संरचना में जड़ित—

करतलध्वनि का सुख भोगते हैं
तड़, तड़, बड़, तड़··· ·······

सभा के विघटन का अभ्यस्त नाद !
और मांसलता पर अंकित अभ्यर्थना के
चिन्ह ! मान्यताएं !
प्रायोगिक भ्रूणों की बुद बुद ध्वनि—
नवीन रंगीन परिधानों में—
बेतार की लहरियों से थिरकती हुई
युद्ध घोषित करती हैं
सूर्य आराधन में कण की संभावना का भय

धार में बहाये बगैर ही—
कुंती को लैंपपोस्टों के पोल्स में मंढ़ना है
हमें पारंपरिक कर्णों की श्रेणी में खड़ा मत करो
हम धनुष नहीं सौंपेंगे,
अग्नि प्रज्ज्वलन के संकल्प से—
नदी को सुखायेगें।

ताकि सूर्यजन्माओं की संख्यातीत भीड़ से—
महाभारत का इतिहास चीथड़ा हो जाये।...
और सारा आलोक को पाता हुआ सिमटता है।
कांच के घर में—
सूखी नदी को निहारता
जहरीला कोलाहल गूंजता है :
सत्य नहीं है—पृथ्वी, आकाश, समीर
विहसती सांझ की हसी को;
भिनसारे की पहली रूमानियत को—
कमरे में एक साथ रोज
कठिन है केंचुवे की तरह रेंगती—
आत्महंता शंकाओं को
दैहिक कंदराओं में छुपाकर—
आगत की अभ्यर्थना में द्वार तक जाना।

किन्तु अब,
कवच ओढ़ लो व्यवस्था के पितामह !
हमने सूरज को कंधों पर उठा लिया है—
नवारोहण की तैयारी में।



रोती ज़िन्दगी के हंसते क्षण

—गुलाम नबी शाकिर

आज़ वह फिर उदास थी। पति की यह बेरुखी उसके जीवन में ज़हर घोल रही थी। अपनी सुन्दरता, अपनी जवानी, पति के सामने सज-संवर कर जाना—यह सब उसे खोटे सिक्के की भांति बेकार और बेमतलब लग रहा था। सुबह जब उसका पति दफ्तर जाने लगा तो वह न जाने क्या सोच बन-संवर कर उसके सामने गई थी। शायद उसे अपने पति की आंखों में प्यार की वह ताजगी नज़र आ जाए जिसे देखने के लिए वह वर्षों से तड़प रही थी। कल रात उस पर प्रेम की ऐसी बरसात हुई थी जिसने पिछले समस्त सन्देह मिटाकर उसके हृदय-सरोवर में एक नया कंवल खिला दिया था। पति ने उसे अपने पास खींचा था और सीने से लगाकर उस पर प्यार बरसाया था। क्षण भर के लिए उसे वह सब भूल गया जो वह सोचा करती थी। अपना पति, संसार की सभी नियामतों से प्यारा और अमोल। मेरे मन में यों ही बुरे विचार आते थे—यह सोचकर वह मन-ही-मन मुस्करा दी थी।

रात भर वह मीठी नींद सोयी थी और सुबह? सुबह फिर वही जो अब तक होता चला आ रहा था। बुरे विचारों का काला नाग फिर उसे डसने लगा। वह यह सोचने पर दुबारा मजबूर हो गई कि उसकी सुन्दरता, उसकी जवानी सब व्यर्थ है। पर नहीं, वह यह सब स्वीकार करने को अभी तैयार न थी। कल रात की एक-एक बात अभी तक उसकी आंखों के सामने घूम रही थी। अभी उन बातों को हुए कुछ ही घंटे तो बीते थे। आज सवेरे जब वे नींद से जागे तो उनका चेहरा एक विचित्र प्रकार का रोष लिये हुए था। माथे पर उभरे बल देखते ही हलीमा का दिल फिर डूबने लगा। जब उनके दफ्तर जाने का समय हुआ तो वह खुद चाय और आमलेट लेकर उनके पास गई। मगर उसका पति आज भी रोज की तरह दस बातों के उत्तर में एक बात करता। हलीमा को साफ लगा कि वे अपनी भावनाओं तथा स्वयं अपने को भी उससे छिपा रहे हैं।

वह यह सोचती ही रही और उसका पति उठकर दफ़्तर जाने को हुआ। हलीमा ने सुना, वे कह रहे थे—मुझे आज दौरे पर जाना है। शायद आज न लौट सकूं। दिन भर उसके होंठों पर यह शब्द बार-बार आता रहा—'स्वार्थी', 'स्वार्थी'। ऐसा आज उसके साथ पहली बार नहीं हुआ था बल्कि पिछले चार साल से उसके साथ यही होता आ रहा था। उसका जीवन एक सहरा बन गया था जहां न विश्राम करने को छांव थी और न प्यास बुझाने को पानी ही। हां, कभी-कभी न जाने कौन सी दिशा से बादल का एक

टुकड़ा आकर वर्षा कर जाता। मगर वह भी अधूरी और ना मुकम्मल। उसके बाद वही बेअन्त सहरा, वही रूखापन और नीरसता। जीवन की यह कठोर वास्तविकता हलीमा के लिए वबाल बन गई जिसका हल ढूंढने के लिए वह छटपटाने लगी, घुटने लगी।

वह पति के जेबों की तलाशी लेती यह सोचकर कि शायद किसी मुंहजली की तस्वीर हाथ लगे या कोई दूसरा सुराग मिले। पर उसे कभी कुछ न मिला। फिर भी उसके मन में रह-रह कर कोई-न-कोई सन्देह उभर कर आ जाता। कुछ ही दिन पहले उसका पति और मकबूल कमरे में बैठे बातें कर रहे थे। कमरे का दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर दिया गया था। हलीमा से न रहा गया। वह दरवाज़े के साथ कान लगाकर उन दोनों की बातें सुनने लगी। जो टूटे-फूटे शब्द वह सुन पाई उनसे उसके तन-बदन में आग लग गई– ओह ! कितना ज़लील और खतरनाक है यह मकबूल। उसने तो यह बहुत पहले महसूस कर लिया था। शादी के बाद जब वह पहली बार मकबूल से मिली थी तो उसकी आंखों में एक अजीब तरह की भूख नजर आई थी उसे। उसने कई बार पति से कहना भी चाहा था कि मकबूल अच्छा आदमी नहीं है। मगर पति ने सच्ची दोस्ती का वास्ता दिलाकर उसका मुंह हमेशा के लिए बन्द कर दिया था। दो-दो बच्चों वाली पड़ोस की उस परित्यक्ता जानो के बारे में वे दोनों ऐसी छिछली और पोच बातें कर सकते हैं, उसने कभी न सोचा था।

उसने एक झटके से प्यालों समेत ट्रे उठा ली। ट्रे को ताक में रखने के लिए जब वह रसोई-घर की ओर बढ़ी तो दीवार के साथ लगे आदमकद शीशे में उसे अपनी छवि तैरती हुई दिखाई दी। वह मुड़कर दुबारा उसी कोण पर आ गई और अपनी छवि को अच्छी तरह निहारने लगी। छोटी सी ज़िन्दगी में अनेक तरह की यातनाएं और दु:ख सहने के बावजूद भी उसके रूप-लावण्य में कोई कमी न आई थी। उसकी आंखों की चंचलता, तराशी हुई नाक के ऊपर दोनों ओर फैली-सी भौहें, शुभ्र वर्ण पर गुलाबी छटा—यह सब उसके भरे यौवन के प्रत्यक्ष चिन्ह थे। तभी उसे ख्याल आया, पर यह सब किसके लिए ? उसकी आंखें भर आयीं। मौन वातावरण में उसकी घुटी हुई हिचकियां उभरने लगीं। धीरे-धीरे वह किन्हीं ख्यालों में खो गई। थोड़ी देर पहले जहां उसे अपनी सूरत नजर आ रही वहीं अब उसकी बचपन की सहेली शबनम मुस्करा रही थी। शबनम, उसकी प्रिय सहेली —ऐसे मौकों पर सदैव उसको सांत्वना देती थी।

'हलीमा, अब कैसा है तुम्हारा पति ?'

हलीमा असमंजस्य में पड़ गई। वही पुराना प्रश्न। न जाने चार साल पहले सहेली के इसी प्रश्न का उसने क्या उत्तर दिया था। शायद वही जो प्राय: सभी अनुभव-हीन नयी-नवेलियां देती हैं, पति के प्रेम की खुलकर प्रशंसा और उसके वायदों व चाहतों का बढ़-चढ़कर बखान। तब शबनम हलीमा का उत्तर सुनकर हंस दी थी—

'अच्छी तरह से देख लिया है या यों ही कह रही हो।'

हलीमा को आज ध्यान आया कि उस दिन कितना तीखा लगा था उसे शबनम का यह सवाल।

हलीमा के जजबात एकबारगी उफन पड़े—

'नहीं-नहीं, वह बाजारी है, लुच्चा है, लफंगा है। मुझसे उसकी भूख नहीं मिटती।'

'मगर क्यों? तुझमें क्या कमी है, तुझ जैसी उसे और कहां मिलेगी?'

हलीमा से इस प्रश्न का कोई उत्तर न बन पड़ा। वह शीशे के सामने अविचल खड़ी रही।

'बोलती क्यों नहीं, तुझमें कौन सी कमी है जो तेरा पति इधर-उधर भटकता है।' शबनम ने अपना प्रश्न दोहराया।

हलीमा चिल्ला पड़ी—'नहीं, मुझ में कोई कमी नहीं है। वह लुच्चा है, लफंगा है। जिस दिन बाहर उसे कुछ नहीं मिलता उस दिन भूखे भेड़िए की तरह मुझ पर टूट पड़ता है।'

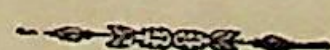
एक अजीब और डरावना ठहाका उसके कानों में गूंज पड़ा। हलीमा डर गई। उसके बदन से कंपकपी छूट गई। वह फिर अकेली रह गई इस ठहाके का अर्थ ढूंढने के लिए। तभी मन में कुछ निश्चय करके वह कमरे से बाहर निकल कर बाथ-रूम में गई। मकबूल की आकृति उसके ज़ेहन में उभर-उभर कर उसके दृष्टि-पट के सामने आने लगी। इस समय उसे उसकी आंखों की वह भूख मोहक लग रही थी। अपने पति से बदला लेने के लिए मकबूल अच्छा ज़रिया है—वह सोचने लगी और इन्हीं ख्यालों में भटकने लगी।

स्नान कर लेने के बाद हलीमा मेकअप के लिए शीशे के सामने आई। बक्स से बढ़िया-से-बढ़िया कपड़े निकाले। शीशे के सामने दुबारा आकर वह पुनः अपना जायज़ा लेने लगी। अपने निश्चय पर वह कभी पुलकित हो उठती और कभी सहम जाती।

किसी के कदमों की आहट हुई और उसी के साथ उसके पति ने दरवाज़ा खोला। हलीमा ने उड़ती हुई दृष्टि से पति को देखा, शायद आज बाहर उसे कुछ हाथ नहीं लगा है, तभी वापस आया है। वह अब भी शीशे के सामने बैठी खुद को निहार रही थी। क्षण-भर बाद उसने फिर पति की ओर देखा। बस, एक ही नज़र से उसका तन-बदन तप गया और भूखे भेड़िए की तरह वह हलीमा पर टूट पड़ा। किसी अनजान कोने से कोई बादल का टुकड़ा प्रकट हो गया था और शायद सहरा में आज फिर वर्षा होने वाली थी। उसने हलीमा को अपने सीने के साथ लगा लिया और उसके होंठों पर अपने होंठ रख दिए।

हलीमा सोचने लगी, मेरा पति, संसार की सभी नियामतों से प्यारा और अमोल है। मैं तो यों ही व्यग्र हो उठती हूं।

अनुवाद—शिबन कृष्ण रैणा



सर्दियों के दिन

—सूर्यभानु गुप्त

सर्दियों के दिन,
बर्फ
गिरती बर्फ में
डूबे हुए पल-छिन,
तुम्हारे बिन,
कैसे गुजरेंगे
पहाड़ी सर्दियों के दिन ?

हवा घोड़े पर चढ़ी डोले,
पेड़ की
फुनगी पे बैठी
एक चिड़िया
पंख खोले,

ध्यान में सूरज बसाए,
धूप की भगतिन,
सर्दियों के दिन……

मेघ इक तालाब में उतरा,
देवदारों के
लबों से, पसलियों
तक, जम
गया कुहरा,

उँगलियों पर अब फटेंगे,
ग्लेशियर गिन-गिन,
सर्दियों के दिन……

बर्फ
गिरती बर्फ में
डूबे हुए पल-छिन……

राजस्थान में कला के दो दशक

—राम कुमार

राजस्थान की रतीली धरती पर मिटती-उभरती रेखाएं और यहां के साफ आकाश पर बदलते विविध रंग, इस बात की ओर संकेत करते हैं कि यहां कला, संगीत, नृत्य की भिन्न-भिन्न विधाओं के अनुकूल वातावरण मौजूद है और इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि हमारा एक परम्परागत सांस्कृतिक वैभव है। चित्र-जगत में राजस्थान के अलग-अलग रजवाड़ों में पनप कर पूर्णता को पहुंची हुई लघु-चित्र शैलियों की धाक आज भी जमी हुई है। अनेक अनाम चित्रकारों ने सामन्तों के कला-प्रेम और संरक्षण के बीच अपना जीवन कला को समर्पित किया और बून्दी शैली, जयपुर शैली, किशनगढ़, मेवाड़, अलवर आदि शैलियों के नाम से विख्यात शैलियों को जन्म दिया। इसी लिए यह स्वभाविक है कि राजस्थान का नाम आते ही एक विविध चित्र-शैलियों का संसार हमारी दृष्टि में उभर आता है।

लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि परम्परा की लीक से हटकर यहां कुछ नहीं हुआ। यहां की धरती में जो उपजाऊपन है, जो गति का बीज है, उसका प्रमाण गत दो दशक में हुए कला-सृजन से मिल जाता है। गत दो दशक का इतिहास परिवर्तनों और संक्रमण से भरी घटनाओं का इतिहास रहा है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक रद्दोबदल से जो बिखराव, टूटन और प्रभाव पैदा हुए, उनसे सामाजिक-चेतना पर असर हुआ। इसका प्रमाण हैं—वे कई नये चेहरे जो राजस्थान के चित्र-जगत में गत बीस वर्षों के दौरान उभरे।

संसार के अलग-अलग हिस्सों की कलाओं, कला-आन्दोलनों और देश के कलाकारों की कृतियों से यहां के कलाकार परिचित होने लगे। एकल प्रदर्शनियां शुरू हुईं। कुछ लोग अपने चित्रों को देश के अन्य नगरों में प्रदर्शित करने भी ले गये। कला-चर्चाओं और कला-समीक्षाओं का एक दौर भी आरम्भ हुआ। ललितकला अकादमी की स्थापना भी

सर्वप्रथम राजस्थान में ही हुई। कई कलाकार अकादमी की वार्षिक प्रदर्शनियों के माध्यम से सामने आये। यद्यपि अकादमी कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन और कला-आन्दोलन को आगे बढ़ाने की भूमिका निभाने में अधिक सफल नहीं रही परन्तु कलाकारों के स्वयं के प्रयत्नों और कला जागृति की प्रेरणा से, नये-नये लोग, नये प्रयोग और नई दृष्टियां लेकर उभरने लगे। यहां के रंग और यहां के वातावरण और शिल्प के नये-नये माध्यमों ने एक ऐसे कला-संसार की रचना की, जिसे आधुनिक कहा जाता है और राजस्थान इसमें कहीं पीछे नहीं। कई नये नाम जुड़ते जाते हैं और कई उभर कर देश के अच्छे कलाकारों की तुलना में खड़े होने लगे हैं।

आज का कलाकार पूरी प्रतिबद्धता के साथ व्यक्ति के संघर्ष और उसकी स्थिति को अभिव्यक्ति देने की पूरी ईमानदारी को निभाने में लगा है। नियमों और सीमाओं से हटकर वह वो सब साधन-सामग्री उपयोग में लाने में लगा हुआ है जो उसके भीतर के आदमी की कशिश को प्रकट करने में मददगार हो। कैनवास का कथ्य विस्तार पाने लगा है। सौन्दर्य को सुन्दर बनाना ही उसका काम नहीं क्योंकि कलाकार अब कुछ विशिष्ट रियायतें पाने वाला व्यक्ति नहीं बल्कि हमारे ही बीच अपनी जीविकोपार्जन करते हुए कला को समर्पित व्यक्ति है, जिसका दर्द, आम आदमी का दर्द है। भूख, प्यास, अकाल, युद्ध, बेरोजगारी आदि अनेक तकलीफों से वह घिरा हुआ है। यह यथार्थ और आदमी की स्थिति उसकी कल्पना में घुल गई है। राजस्थान के गांव बदले हैं, और शहर भी। सारे परम्परागत जीवन के रेशमी धागे उलझ-उलझ गये हैं। एक गहरा-परिवर्तन आया है—परिवेश में, और इसकी छाप स्पष्ट परिलक्षित है—गत बीस वर्षों की राजस्थानी कला में।

राजस्थान में कला-आन्दोलन को नये आयाम देने वाले और आधुनिक-परिवेश से जुड़ी हुई कला के सृजकों में परमानन्द चोयल, द्वारकाप्रसाद, ज्योति स्वरूप, पारस भंसाली, ओमदत्त, मोहन शर्मा, आर० बी० गौतम, शब्बीर हसन काज़ी, आर० बी० सखलवाड़, प्रेमचन्द्र गोस्वामी, रंजन गौतम, बी० सी० गुई, दीपिका गुई, शैल चोयल, धीरेन घोष, रीता वैश्य, सुरेश शर्मा, हर्ष छाजेड़ आदि के साथ-साथ जो नये समर्थ कलाकार अपनी जगह बना रहे हैं उनमें हेमन्त शेष, कन्हैयालाल वर्मा, रमे ग्रामीण, कुमारी किरण मुर्डिया, ललित प्रकाश, लालचन्द मरोठिया, चन्द्र शेखर श्रीमाली, कुमारी करुणा चौहान आदि हैं, जिनके चित्रों से कला की सही पहचान की जा सकती है। इनके अतिरिक्त गत वार्षिक कला-प्रदर्शनी में जो कलाकार दर्शक की दृष्टि को बांधने वाले सामने आये, उनमें प्रमोद कुलश्रेष्ठ, विष्णुदत्त सोनी, सुरेश राजोरिया, लक्ष्मीलाल वर्मा आदि हैं। गत सोलह वर्षों में राजस्थान ललितकला अकादमी ने नवनिर्मित कलादीर्घा में राजस्थान के भिन्न-भिन्न भागों की कृतियों के प्रदर्शन के माध्यम से पहली बार कुछ अच्छी शुरूआत की और गति का परिचय दिया। प्रदर्शनी में एक ओर नवांकन की महक थी वहां दूसरी ओर राजस्थानी

परम्परावादी चित्रशैलियों के आधार वाली कृतियां भी अपने सुरुचिपूर्ण स्वरूप में उपस्थित थीं।

राजस्थान में आधुनिक कला के विकास के गत दो दशकों को जीवन देने वाले समर्थ कलाकारों की चर्चा करते समय लगता है—कुछ समर्थ हस्ताक्षरों का नामोल्लेख करने की भूल रह जाये क्योंकि अकादमी अपनी वार्षिक कला प्रदर्शनी और एकल प्रदर्शनियों के आयोजनों के अतिरिक्त ऐसी कोई सामग्री एकत्रित नहीं कर पाई है जिससे राजस्थान में फैले हुए आधुनिक कला के प्रारम्भ से आजतक स्तम्भ के रूप में काम करते आ रहे तथा उभरते चेहरों की ओर 'रेफरेन्स' के रूप में कहीं कुछ मिल सके। यहां तक कि कई चित्रकारों को अकादमी पुरस्कार भी मिलते हैं लेकिन उनकी कृतियों की प्रचार-प्रसार की दृष्टि से चर्चा नगण्य ही हो पाती है।

लोग इकाइयों में बटे हैं और इसलिए उन्हें किसी एक मंच पर एक साथ एकत्रित रूप में देखने और गत बीस सालों की कला का मूल्यांकन करने के मार्ग में अभी भी कुछ खामियां हैं। लेकिन जो आभास होता है, उससे यह कहा जा सकता है कि राजस्थान में आधुनिक ही नहीं कला की सारी विधाओं के सन्दर्भ में काफी कुछ जागृति आई है और बहुत कुछ काम हुआ है। लेकिन इसका मूल्यांकन सही रूप में करने की कमी आज भी बनी हुई है। यह काम कलाकार, कला-प्रेमी और अकादमी– सब मिलकर करें तो शायद आधुनिक कला की बीस वर्षों की यात्रा का लेखा-जोखा सही रूप में हम कर सकेंगे।



मोम का घर

—जितेन्द्र उधमपुरी

अभावग्रस्त
यातना भरे
इस शहर में
हर गली
जाकर रुकती है
एक नये दर्द के मोड़ पर,
हर बाजार
अपने माथे पर चिपका कर
महंगाई का एक नया इश्तहार
एक नई घुटन का
अहसास सौंप जाता है
और
दे जाता है
संघर्ष
भटकाव के
कभी खतम न होने वाले
दूर तक फैले
सिलसिले ।
ऐसे में
रात-दिन
चुभन और उत्पीड़न की
धीमी-धीमी आग से
रहता सुलगता-झुलसता
आशाओं, आकांक्षाओं
और सपनों का
सुन्दर, रंगदार
मेरा मोम का घर ।

गीली दीवार

ज्योतीश्वर 'पथिक'

मरियल सी खांसी से वातावरण और भी उदास हो गया।

द्रोपदी अय्यर चौंक उठी मगर दूसरे ही क्षण उसने गीले उपलों को जलाने के लिये एक और प्रयत्न किया।

मिस्टर अय्यर का विचार आने ही वह कमरे की ओर बढ़ी। बलग़म से भरे चेहरे को पोंछा, और थूक की ट्रे उठा कर बाहर आ गई

मिस्टर अय्यर सामने पेंटिंग को घूरे जा रहा था।

—चादर ओढ़ लो शायद नींद आ जाए !

द्रोपदी ने सांत्वना देते हुए कहा।

—नींद—अब तो लम्बी नींद का इंतज़ार है।

—ऐसा नहीं कहते डार्लिंग, अभी बहुत सी अधूरी पेंटिंग्ज़ पड़ी हैं। उन्हें पूरा नहीं करोगे।

—नहीं ! अय्यर ने निर्णायक स्वर में कहा !—"अब मैं कुछ नहीं करूंगा।"

...द्रोपदी—अय्यर ने पुकारा

"हां।"

—मेरे बाद तुम पिल्ले से शादी कर लेना।

—ऐसा नहीं कहते ! इस से पाप लगता है।

—पाप और पुण्य की बातें तो मैं नहीं जानता मगर—

—मगर कुछ नहीं डार्लिंग !—तुम सो जाओ वरना मैं रो पड़ूंगी।

अच्छा तुम कहती हो तो कोशिश करता हूं।

अय्यर ने जैसे आखरी बार सामने दीवार पर लगी पेंटिंग को देखने की भरसक चेष्टा की और फिर सोने की कोशिश करने लगा। सीलन भरी दीवार पर बनी हुई पेंटिंग के रंग अब उखड़ने लगे थे—अगर उठ पाया तो इस पेंटिंग को रिटच जरूर करूंगा।

—डार्लिंग, सोने की कोशिश करो। द्रोपदी ने आवेगपूर्ण स्वर में कहा।

पिल्ले का नाम लेकर अय्यर ने द्रोपदी के घावों पर नश्तर लगा दिया था। बहुत दिनों से उसे उसका विचार तक न आया था। मगर आज उसे जैसे नंगा कर दिया हो किसी ने।

द्रोपदी का व्यक्तित्व वास्तव में ही दो धारों में बटा था—अय्यर और पिल्ले !

दो बिन्दुओं के बीच उसके जीवन की नैया भटक रही थी। कभी-कभी तो उसे यह नाव डोलती महसूस होती और झुकाव बिगड़ने लगता। उस समय उसे अपने आप से नफरत होने लगती, मगर वह कर भी क्या सकती थी।

अय्यर एक अच्छा चित्रकार था। कमर्शियल पेंटिंग्ज से वह इतना कमा लेता कि दम्पत्ति का खर्चा अच्छे ढंग से चल रहा था। अच्छा खासा व्यक्तित्व था उसका। कभी-कभी जब वह उसके साथ पार्टियों में जाती तो दूसरी लड़कियाँ उसकी ओर स्पर्द्धापूर्ण नजरों से देखा करतीं। लड़कियों की टोलियां अय्यर को घेरे रहतीं···

मगर अय्यर उसके लिये पति था और कुछ नहीं। वह उसे दिल से नहीं चाह सकी थी। वह पत्नी जिसे मां-बाप ने मजबूरी में अय्यर के पल्ले बांध दिया था और वह अपना फर्ज निभाती चली आ रही थी। मगर उसे प्रेमी के रूप में अपने से हमेशा असमर्थ रही थी। उसके फर्ज ने भावनाओं से कभी समझौता न किया। उसने प्रेमी के रूप में केवल पिल्ले को देखा था !

अय्यर को यह स्थान वह कभी न दे सकती थी।

गांव से मिशन स्कूल तक एक साथ सफर करते-करते दोनों ने भावी जीवन के सुनहरे सपने देखे थे मगर जब द्रोपदी ने होश संभाला तो पिल्ले गांव से दूर चला गया था। फिर द्रोपदी के पिता भी कारोबार की तलाश में भटकते रहे और थक कर उन्होंने द्रोपदी को अय्यर के पल्ले बांध कर सुख की सांस ली थी। जीवन का बोझ उतार फैंका हो जैसे।

अय्यर ने कभी कोई कमी न रहने दी। जीवन की हर सुविधा जुटाने की कोशिश की थी उसने ! मगर उसका जीवन स्तर कभी मंझले से ऊपर न उठा और न ही उसने कभी ऊंची उड़ान भरने का सपना देखा था।

मगर दिल के इक कोने में अब भी पिल्ले की याद बाकी थी। उसकी नजरें अब भी जीवन की भीड़ में पिल्ले को तलाशती रहतीं और पिल्ले जीवन की आकांक्षाओं को अपनी पेंटिंग्ज़ में समोता रहा। उसकी जलती हुई आंखें हमेशा प्यासी रहीं।

मगर द्रोपदी मजबूर थी !—उसने कभी अय्यर को पिल्ले का स्थान न दिया।

एक दिन जीवन की भीड़ से पिल्ले का चेहरा उभर आया और द्रोपदी उसके सामने अभियुक्त बनी खड़ी थी।—अय्यर और पिल्ले का अंतरद्वन्द्व पहली बार उसके सामने आया था।

फिर वह पिल्ले की ओर खिचती चली गई। दोनों ने पुरानी पहचान को जगाया। पुरानी उमंगों और आकांक्षाओं की पींगें बढ़ाईं। मगर वे मजबूर थे अपनी-अपनी सीमा में रहने के लिये। द्रोपदी ने यह सब अय्यर पर प्रकट न होने दिया और न ही अय्यर ने कभी शक में आकर किसी से कुछ पूछने का प्रयत्न किया। वह अपनी कलाकृतियों में व्यस्त रहा इस विश्वास पर कि एक दिन द्रोपदी की दुनिया को रुपये पैसे से जगमगा कर रख देगा।

द्रोपदी एक कदम और आगे बढ़ी···पिल्ले को पाने के लिये। अय्यर से उसने कहा कि मैं दूर-पार की बहन के पास जा रही हूं और वह पिल्ले के साथ ऊटी चली गई। जहां एक मास तक उन्होंने एक दूसरे का सामीप्य प्राप्त करने के लिये तमाम सीमाएं फलांग दीं—

—आओ, कहीं भाग चलें। एक दिन पिल्ले ने द्रोपदी को निमंत्रण दिया।

—नहीं मैं अपनी परिस्थितियों की बंदिनी हूं।

—बंधन तोड़ डालो।

—नहीं में कमज़ोर हूं।

—तो फिर ऐसा कब तक चलेगा ?

—कुछ नहीं कह सकती पिल्ले, मैं अजीब दोराहे पर खड़ी हूं। एक ओर मेरा कर्त्तव्य है. वर्तमान है और अय्यर है, जिसने मुझे हर सम्भव सुख देने का प्रयत्न किया है और दूसरी तरफ—तुम हो जो वर्षा ऋतु के बादलों की तरह चांद से आंख मिचौनी खेलते हो। तुम कब मेरे जीवन में दाखिल हुए और कब चल दिये कुछ पता नहीं परन्तु तुम्हारे सामीप्य में मुझे सुख की अनुभूति हुई है और अय्यर के साथ एक अजीब घुटन का एहसास मेरे रोम-रोम को जलाए जा रहा है। मुझे बचा लो पिल्ले, मुझे इस दुविधा से निकाल लो। मैं मर जाऊंगी पिल्ले;—द्रोपदी फूट-फूट कर रो पड़ी और पिल्ले उसके बालों को सहलाते हुए उसे सांत्वना देता रहा।

—पिल्ले सोच रहा था—अजीब औरत है, इन बधनों को तोड़ कर विद्रोह भी नहीं करती और न ही इन परिस्थितियों से समझौता करना चाहती है। इस घुटन में वह तिल तिल कर जान दे देगी।

अगली सुबह वह घर के लिये रवाना हुई। वह अय्यर को देखकर अवाक सी रह गई। जैसे वह सदियों से बीमार चला आ रहा हो, एक अजीब सा वहशीपन उसकी

आंखों से झलक रहा था। जैसे वह चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा हो—"तुम्हारी चोरी मैंने पकड़ ली है। तुम अब और धोखा नहीं दे सकतीं।"

मगर अय्यर मौन था, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

—अच्छा हुआ तुम आ गईं द्रोपदी। केवल इतना ही कहा था उसने।

खांसी की आवाज़ से उसके विचारों का तांता टूट गया। वह भागी हुई अंदर गई जैसे किसी खतरे ने उसे अंदर ही अंदर कचोट दिया हो—

—तुम अभी सोए नहीं।

—नहीं, शायद लम्बी नींद आ जाए, फिर कभी न जाग सकूं।

अय्यर ने अटैची से कागज़ निकालते हुए कहा—यह मेरी इन्श्योरेंस पालिसी और चैक-बुक है, अब यह तुम्हारी अमानत है। द्रोपदी की आंखें छलकने लगीं।

—रोओ नहीं पगली, तुम्हारा कोई दोष नहीं। अय्यर कह रहा था—"तुमने जो कुछ किया वह अप्रत्याशित नहीं था, तुम्हारी जगह कोई भी दूसरा होता यही करता···" द्रोपदी की सुबकियां निकल रही थीं, वह फूट-फूट कर रोने लगी।

—तुम्हारे अपने सपने थे जो तुम्हारे ही बंधनों में जकड़े रहे। मेरे भी कुछ सपने थे जो साकार न हो सके मगर···मगर न तुम दोषी हो और न मैं।

अय्यर कहता रहा और वह सुनती रही, मूक और पाषाण सी निस्तब्ध।

फिर कुछ देर के लिये अय्यर मौन रहा।

—द्रोपदी···उसने फिर कहना शुरू किया।

—हूं—वह सिर्फ इतना-कह सकी

मेरी बात मान लो, मेरे बाद पिल्ले से शादी कर लेना···

— मुझे और लज्जित न करो अय्यर, वह फफक-फफक कर रो पड़ी।

—नहीं द्रोपदी—वह इतना कह पाया था कि उसकी ज़बान बंद हो गई, एक कहानी खामोश हो कर रह गई।

रात के पहले पहर अय्यर सदा-सदा के लिये सो गया। द्रोपदी मूक सी बनी सामने की गीली दीवार पर बनी पेंटिंग को देख रही थी जहां नीचे चारपाई पर अय्यर की लाश पड़ी थी।

पिल्ले ने किवाड़ खोला नारियल के पेड़ों से छन कर धूप कमरे में आने लगी—और द्रोपदी, अय्यर और पिल्ले के बीच केन्द्र बिंदु की तरह खड़ी थी।

आधुनिक हिन्दी काव्य में कृष्ण

डॉ० सुरेन्द्र कोहली

आधुनिक युग के कृष्ण-भक्तकवियों ने एक ओर तो कृष्ण के परम्परित रूप को ग्रहण किया है और दूसरी ओर उनके चरित्र में युगानुसार नवीन गुणों की सृष्टि की है। इस प्रकार आधुनिक कृष्ण-काव्य में प्राचीनता और नवीनता का अद्भुत सामंजस्य दृष्टिगत होता है।

परम्परागत कृष्ण का चरित्रांकन मुख्य रूप से महाभारत, गीता, भागवतपुराण तथा सूर सागर के आधार पर हुआ है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार श्री कृष्ण को ब्रह्म का अवतार मानते हुये द्वारका प्रसाद मिश्र लिखते हैं :—

भयेउ कला षोड़श सहित, कृष्ण चन्द्र अवतार।
पूर्ण ब्रह्म हरि यश विमल, बरनहुं मति अनुसार।[1]

पंडित राधेश्याम कथावाचक प्रणीत 'कृष्णायन' में आठ कलाओं से अधिक कलाएं रखने वाले को भगवान् का अवतार माना गया है।

श्री राम बारह कलावतारी थे और श्री कृष्ण षोड़श कलावतारी।[2]

श्री रूप नारायण पांडेय ने श्री कृष्ण के विश्व रूप का उल्लेख करते हुये ब्रह्मा के मुख से कहलाया है कि भगवान् निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार दोनों हैं। यह ब्रह्माण्ड उन्हीं का विराट शरीर है।[3]

राष्ट्रीय कवि श्री मैथिली शरण गुप्त ने 'जयद्रथ वध' में कृष्ण को ब्रह्म का रूप मानते हुये उन लोगों को मूर्ख कहा है जो कृष्ण को मानव के रूप में देखते हैं।

---

१. द्वारका प्रसाद मिश्र—'कृष्णायन'— पृष्ठ २

२. राधेश्याम कथावाचक—कृष्णायन—कृष्णजन्माष्टमी—पृष्ठ ६

३. रूपनारायण पांडेय—श्री कृष्णचरित—पृष्ठ ९७

माधव तुम्हें जो इष्ट होता। अज्ञानता से मूर्खजन मानव तुम्हें हैं मानते।[४]

ब्रह्मा, विष्णु और महेश सभी कृष्ण जी के वश में हैं, परन्तु वे अपने भक्तों के वश में होकर साधारण मनुष्यों की भांति आचरण करते हैं।[५]

आधुनिक कृष्ण काव्यों में कृष्ण की रूप-माधुरी तथा बाल्यावस्था की क्रीड़ाओं का वर्णन परम्परा से प्राप्त सामग्री के आधार पर ही हुआ है। पीत-वस्त्र धारी श्याम के सौंदर्य का वर्णन करती हुई कृष्णा मां लिखती है—

बसे री दृग, नंद कुंवर रसराय।
नील बरन तन, पीत बसन—वनमालहिं लालहिं भाय।
मिलन, हंसन, बतरावन—भावन, पावन मृदु मुसकाय॥
चितवन चलन, मुरनि मोरन जस, नृत्यत नटहु लजाय।[६]

अपनी अद्‌भुत सुन्दरता से श्री कृष्ण ने सब ग्राम वासियों को मुग्ध कर लिया है। वे उनके मुख को ऐसे देखते हैं जैसे तृषित-चातक बादल की घटाओं को देख रहे हों।[७] उनकी सुन्दरता को देख कर शिशु उछल पड़ते हैं तथा वृद्ध, युवक-युवतियां रसमग्न हो जाती हैं।[८]

आलोच्य काव्यों में कृष्ण के बालरूप का अधिकतर वैसा ही वर्णन हुआ है जैसा कि सूरदास की रचनाओं में मिलता है। कभी वे चन्द्रमा के लिये मचलते हुये दिखाई देते हैं।[९] तो कभी दाऊ बलराम की माता यशोदा के पास शिकायत करते हुये।[१०] उनका मुस्कराना[११], तुतलाना[१२], किलकारियां मारना[१३], घुटुरुवन बल रेंगना[१४], माता की उंगली पकड़ कर चलना[१५], गायें चराने के लिये वन में जाना[१६], माता यशोदा द्वारा हाऊ का भय[१७], गोपियों के घर माखन के लिये चोरी से घुसना और गोपियों की माता यशोदा से

४. अभिनन्दन ग्रंथ पृ० ३६१ से उद्‌धृत
५. वियोगी हरि—अनुराग मंजरी—पृ० २२
६. कृष्णा मां—श्री जुगल पद वंदन—पृ० ९९
७. हरिऔध—प्रियप्रवास—पृ० ५
८. वही —पृ० ६
९. राधेश्याम—कृष्णायन—पृष्ठ २६
१०. रूप नारायण पांडेय—श्री कृष्ण चरित—पृष्ठ ७
११-१४ हरिऔध—प्रियप्रवास—अष्टम सर्ग पद २४-२८
१५. बाबू राम शास्त्री 'हरेकृष्ण'—वंशी—पृष्ठ ९२-९९
१६. द्वारका प्रसाद मिश्र—कृष्णायण—पृष्ठ २७
१७. बाबू राम शास्त्री 'हरेकृष्ण'—वंशी—पृष्ठ ९१

शिकायत[18], कृष्ण का ऊखल के साथ बांधा जाना[19], यशोदा का कृष्ण के मुख में तीन लोकों के दर्शन करना[20] आदि के वर्णन में कोई नवीनता नहीं है। चोटी बढ़ाने के लालच में निम्नलिखित चित्र कितना प्रभावशाली बन पड़ा है—

"म खन खात बढ़ति न चोटी, होति लाल पय पय पियतहि मोटी।"
सुनतहि फेंकेउ कर ते माखन, चोटी नहि लागे पय मांगन—
देहि अबहिं मोहि दूध पियायी, कबहु न हौं माखन खाई।
पियउ घूंट दुइ दूध कन्हैया कहत—"न बाढ़ी चोटी मैया॥[21]

कृष्ण के सौंदर्य-वर्णन में कहीं-कहीं आधुनिकता का प्रभाव भी लक्षित होता है। 'मधुपर्क' के लेखक ने कृष्ण के विभिन्न अंगों की सुन्दरता में जन-भावना का प्रकाश देखा है। उदाहरणार्थ—

कल कपोलनि में छवि जो बसी जगत् की अनुरंजन कारिनी।

× × ×

सुछवि सुन्दर नाभि निकेत की, निखिल लोक निकेतन पी लसी।

× × ×

पद सरोजनि की महिमा महा भुवन में उतरी बनी पुन्यता॥

आधुनिक कृष्ण काव्यों में राधा के प्रेमी के रूप में किशोर कृष्ण का चित्रण भी परम्परागत है। राधा की प्रीति कृष्ण के साथ बचपन से ही है।[22] उन दोनों का बाल-स्नेह ही आगे चलकर प्रणय में परिवर्तित होता है।[23] धीरे-धीरे इन दोनों का प्रेम इतना उत्कट हो जाता है कि दोनों में कोई भेद नहीं रहता।[24] किन्तु अभिन्न होते हुये भी इन्हें मर्यादा का उल्लंघन मान्य नहीं।[25] दुर्भाग्य से ये दोनों अधिक देर तक एक साथ न रह सके और कृष्ण शीघ्र ही गोकुल छोड़कर मथुरा में रहने लगे। मथुरा में राधा की स्मृति कभी-कभी इन्हें इतना बेचैन कर देती है कि ये मूर्छित हो जाते हैं[26]। उद्धव अपने ज्ञानयोग

---

१८. मिश्र—कृष्णायन पृष्ठ २५
१९. श्री कृष्ण चरित—पृष्ठ ७९
२०. मिश्र—कृष्णायन—पृष्ठ २०-२१
२१. देवी रत्न अवस्थी 'करील'—मधुपर्क—तृतीय सर्ग छन्द २७,३५,३६ व ३९
२२. हरिऔध —प्रियप्रवास—चतुर्थ सर्ग पद ९-१०
२३. वहीं — पद १६
२४. द्वारका प्रसाद मिश्र —कृष्णायन—पृष्ठ ५४
२५ दाऊ दयाल गुप्त —राधा—पृष्ठ २४
२६. रत्नाकर —उद्धवशतक—पद एक
वही—

से कृष्ण के विरह को शान्त करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु प्रेम में पगे कृष्ण उद्धव द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलने के लिये तैयार होने से पूर्व उद्धव से स्वीकृति ले लेते हैं कि वे (उद्धव) कृष्ण के सन्देश को गोपियों तक पहुंचाने के लिये जाएंगे। कृष्ण को विश्वास है कि गोकुल से वापस आने पर उद्धव प्रेम के महत्त्व को भली भांति पहचान जायेंगे।

राधा की सुधि के साथ-साथ कृष्ण को ब्रज-भूमि, माता यशोदा, बाबा नन्द, गोपियों तथा अन्य ग्वाल-बालों का भी ध्यान आता रहता है जिससे उनकी व्याकुलता और अधिक बढ़ जाती है। मथुरा में सोने के घड़े देख कर उन्हें ब्रज की जल से भरी हुई गागरिया याद आने लगती है और मथुरा के बड़े-बड़े मार्गों को देखकर अपने गोकुल की तंग गलियों का स्मरण हो आता है।[२७] उन्हें अनेक प्रकार के रसमय व्यंजनों से वह तृप्ति प्राप्त नहीं होती जो माता यशोदा के 'मलैया' और 'माखन' से मिलती है। तीन लोक की सम्पत्ति उनके ब्रज की धूल के समान भी नहीं।[२८] जिस धरती की मिट्टी खाकर कृष्ण बड़े हुये वही अब उनके हृदय में समायी हुई है। उसको भूल जाना कृष्ण के वश में नहीं। उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है।[२९]

कतिपय आधुनिक कृष्ण-काव्यों में चित्रित कृष्ण का रूप रीतिकालीन कवियों की परिपाटी का है। राधा-कृष्ण की काम-केलि का एक दृष्य प्रस्तुत है—

पौढे दोऊ बातन के रस झीने।
नींद न लेत असाही रहे दोऊ केलि कथा चित दीने॥
तैसइ सीतल सेज विछाई सखि बिजन कर लीने।
'हरीचंद' आलस भरि सोए ओढ़ि के पट झीने॥[30]

किशोरी लाल गोस्वामी की कृति 'होली रंग घोली' में चित्रित राधा-कृष्ण में वही प्रबल उन्मतता है जो रीतिकालीन राधा-कृष्ण में है। फूलों की सेज पर आलिंगनबद्ध राधा-कृष्ण का निम्नलिखित चित्र अवलोकनीय है—

संगम नवीन सिसकीन करि मीन सम उछरि परी न परै भागन चाहती है।
ज्यों-ज्यों पिय पियारे भरि भुजसों प्रसून सेज, त्यों-त्यों कुच करदे सुनीबी को गहति है।
एको न वसाइ सारी रजनी गंवाई, कुच-कलस-कपोल छत सुधि न लहति है।
प्यारी की उनीदी अनियारी रतनारी आंख, चढ़ि रही चित्त ना उतारे उतरति है।[31]

---

२७. मधुपर्क—पृष्ठ २०५

२८. उद्धवशतक—पृष्ठ १०

२९. दीवान बहादुर चन्द्रभानुसिंह 'रज'—नेह निकुंज—पृष्ठ ३२

३०. भारतेन्दु ग्रंथावली—पृष्ठ ६२ पद ५५

३१. किशोरी लाल गोस्वामी—होली रंग घोली—पृष्ठ ४

बहुत से कृष्ण कवियों का रास लीला वर्णन प्राचीन होते हुए भी नवीन है। इस प्रसंग में कृष्ण जी को एक समाज सुधारक के रूप में प्रस्तुत करना इनकी विशेषता रही है। योग समाधि द्वारा कृष्ण जी को जब ज्ञात होता है कि गोपिकायें बिना माता-पिता की आज्ञा से आई हैं तो वे इसे अनुचित समझते हुये कहते हैं कि—हे सतियो ! यह तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं, तुम कोई ऐसा काम मत करो जो कुल के विरुद्ध हो। घर जा कर कुटुम्ब को सान्त्वना दो जिससे तुम्हारे माता-पिता दुखी न हों। तुम्हारे घर में गायें रंभाती खड़ी हैं, उनको जा कर दुहो और बछड़ों को दूध पिलाओ। तुम्हारे अपने शिशु भी पालनों में रो रहे होंगे, उन्हें जाकर गोद में उठाओ। पिता-माता की चिन्ता को दूर करते हुये अपने कुटुम्ब के कष्ट मिटाओ। शीघ्र घर जाकर अपने पति देव की सेवा में ध्यान लगाओ। ऋषि आश्रम के समान गृह स्वच्छ करो, शिशु पालन-पोषण में रत हो जाओ। यथाक्रम अपने घर की वस्तुओं को सुधारो। परिवार की सेवा जो सुख से करती है, अमृत तुल्य वचन अपने मुख से निकालती है, पति की आज्ञा का सदैव पालन करती है, जड़, रोगी, धन-हीन, दुखी, वयोवृद्ध, कुरूप कैसा भी पति हो उसकी शक्ति और सहिष्णुतापूर्वक सेवा करती है वही पतिव्रता नारी है और वही अपना तथा अपने कुल का उद्धार करती है।[32]

कृष्ण जी के चरित्र पर प्रायः यह लांछन लगाया जाता है कि वे बड़े विलासी थे और नग्न नहाती हुई गोपियों के वस्त्र चुरा लिया करते थे। चीरहरण के इस प्रसंग में आधुनिक - कृष्ण - कवियों ने श्री कृष्ण जी के चरित्र में परिष्कार करते हुये उनके द्वारा गोपियों को सुन्दर शिक्षा दिलवाई है—

> जिस तरह रात को जग सोता, यमुना का भी जल सोता है।
> ऐसे में तुम नहाने आई ? क्या पाप नहीं यह होता है।
> कहती हो—'हे नारीत्व-लाज, फिर भी कुछ लाज न आती है।
> पानी में नंगी नहाती हो, क्या इस में लाज न जाती है ?
> इस जल का स्वामी वरुण देव क्या नहीं निहार रहा तुम को ?
> क्या पाप कर रही हो तब तो आपा धिक्कार रहा तुम को ॥[33]

महाभारतीय कृष्ण की भांति आलोच्य काव्यों के कृष्ण कौरवों और पाण्डवों के युद्ध को टालने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु इसमें वे सफल नहीं होते।[34] वे जब देखते हैं कि

---

३२. वशी—पृ० १२१-१२२
३३. कृष्णायन—पं० राधेश्याम—पृष्ठ १७
(गिरवरधारी)
३४. कृष्णायन—द्वारका प्रसाद मिश्र—पृष्ठ ३५०

कौरव युद्ध के बिना मानने वाले नहीं तो धर्म की रक्षा हेतु, धर्म निष्ठ पाण्डवों का साथ देते हैं और रण-भूमि में स्वयं उपस्थित रहते हैं। युद्ध-क्षेत्र में अपने बन्धु-बान्धवों को देख कर जब अर्जुन को मोह होने लगता है तब 'वंशी' के योगीराज कृष्ण 'गीता' के योगीराज कृष्ण बनकर आत्मा का रहस्य समझाते हुये कहते हैं कि जिस प्रकार मनुष्य फटे-पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को त्याग कर नये शरीर को धारण करती है।[३५] कर्म-योगी कृष्ण के दर्शन हमें 'कृष्णायन' के गीता काण्ड में होते हैं। वे अर्जुन से कहते हैं कि तुम योगस्थित हो, आसक्ति को भूल कर कर्म करो। तुम्हारा अधिकार कर्म पर है कर्म-फल पर नहीं।[३६] अन्त में अर्जुन का सारा मोह दूर हो जाता है और वह हाथ में धनुष-बाण लेकर अपनी वीरता का प्रदर्शन करता है।[३७]

आधुनिक कृष्ण काव्यों की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उनमें कृष्ण को एक लोक-नायक के रूप में चित्रित किया गया है। जब भी किसी पर कोई विपत्ति आती है तो वे वहां पहुंच कर तुरन्त उसकी रक्षा करते हैं। रुक्मिणी[३८] और द्रौपदी[३९] ने जब सहायता के लिये कृष्ण को पुकारा भगवान तत्काल वहां पहुंच गये। इसी प्रकार कुरूप कूबरी पर कृपा करके उन्होंने उसको ऐसा रूप प्रदान किया कि वह अपने आप को देखकर स्वयं भी चकरा गई।[४०]

कृष्ण जी का जन्म लोक-कल्याण के लिये ही हुआ है। अपने बाल्यकाल में उन्होंने शकट, प्रलंब, अघासुर, तृणावर्त, वत्सासुर, मुष्टिक, चाणूर, केशी, पूतना आदि का वध व्रज मण्डल की सुरक्षा के लिये ही किया। देशोद्धार के लिये वे अपने प्राणों की बाजी लगाकर कालिय-मर्दन करते हैं।[४१] स्व-जाति की रक्षा को वे सर्व-प्रधान धर्म मानते हैं,[४२] इसलिये प्रचण्ड दवानल[४२] तथा इन्द्र के प्रकोप[४३] से वे व्रजवासियों की रक्षा करते हैं। कूबरी के समक्ष कृष्ण के लोक-नायकत्व पर प्रकाश डालते हुये गर्ग मुनि कहते हैं—

---

३५. वंशी—पृष्ठ २१२
३६. कृष्णायन—पृष्ठ ३०६
३७. वही —पृष्ठ २१५
३८. श्री कृष्ण चरित—पृष्ठ २९१-२९७
३९. द्रौपदी दुकूल—श्री राम लाल—अष्टम सर्ग—पृष्ठ ३०-३२
४०. कूबरी—राम नारायण अग्रवाल—पृष्ठ ३१
४१. प्रिय प्रवास—पृष्ठ ११,८५,९४,९५
४२. वही —पृष्ठ ३८
४३. वही —१२/१७

शोराज।

आज बताऊं तोय भेद सुन यह, सुकुमारी।
जनमे हैं ब्रज आय, नन्द के भौन मुरारि।।
निर्गुण अलख अरूप, रूप धरिकै हैं आय।
हरिऐ कौं भू-भार कृष्ण भू पर प्रकटाये।।[४४]

कंस का वध श्री कृष्ण ने किसी राजनैतिक स्वार्थ से प्रेरित होकर नहीं किया था, अपितु कंस के अत्याचार ही उसकी मृत्यु का कारण बने थे। उग्रसेन को राजमुकुट पहनाते हुये कृष्ण अपने मन्तव्य को स्पष्ट कर देते हैं—

राजा बनने का स्वप्न कभी सेवक ने नहीं निहारा है।
शासन करने के लिये नहीं मामा जी को संहारा है॥
उस वध का कारण है केवल, शोणित दुधमुहें दुलारों का।
या बदला है बन्दीघर में अब तक के अत्याचारों का॥
जो कैद पिता तक को कर दे उसको संहारना ही अच्छा।
जिसका हो खेल जीव-हत्या, बस उसे मारना ही अच्छा॥[४५]

उनका अवतार केवल दीन-दुखियों एवं रोगियों की सेवा करने के लिये हुआ है—

रोगी दुखी विपद-आपद में बड़ों को,
सेवा सदैव करते निज हस्त से थे।
ऐसा निकेत व्रज में न मुझे दिखाया,
कोई जहां दुखित हो पर वे न होवें।[४६]

माता-पिता और गुरुजनों की सेवा करते समय भी उन्हें कोई आर्त-वाणी सुनाई देती तो वे तुरन्त सेवा को त्याग कर उसको शरण देते।[४७] कुपथ पर जाती हुई जनता का पथ प्रदर्शन करना वह अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझते हैं।[४८]

श्री कृष्ण जी सामाजिक जीवन के साथ-साथ पारिवारिक जीवन के लिये भी एक आदर्श बनकर हमारे सामने आये हैं। माता-पिता, गुरुजनों और बड़ों का सम्मान करते और अगर कहीं उन्हें निरादृत होता देखते तो उन्हें बड़ा दुख होता।[४९] अपने पिता उग्रसेन

---

४४. कूबरी—पृष्ठ १७
४५. कृष्णायन—पं० राधेश्याम—पृष्ठ २१
४६. प्रियप्रवास—१२/८७
४७. वही १४/२६
४८. वही १२/५६
४९. वही १४/८०-८६

के प्रति कंस के कटु वचनों को सुन कर कृष्ण को क्रोध आ जाता है और वे ललकारते हुये कहते हैं—

व्रजसिंह क्षमा करता तुमको, लेकिन अब छोड़ न सकता है।
बापू के टुकड़े किये जायें बेटों के आगे कहता है।
हम अपने पूज्य बुजुर्गों का हर्गिज अपमान न देखेंगे।
कायर कहलायेंगे जग में गर बदला अभी न ले लेंगे॥[५०]

कृष्ण जी का शिष्टाचार भी अनुकरनीय है। मथुरा जाने से पूर्व वे माता-पिता के चरण छूते हैं। ब्राह्मणों की पाद-वन्दना करते हैं। बड़ों को हाथ जोड़ते हैं और फिर माता-पिता के आशीर्वाद को ग्रहण कर रथ में बैठते हैं।[५१]

कृष्ण कृतघ्न नहीं। माता यशोदा ने उन पर जो उपकार किये हैं उनको स्मरण करते हुये वे कहते हैं—

निज पुत्र समान ही पाला मुझे, परमनिधि प्रीति से प्यार किया।
कहूं कैसे मैं माता यशोमती ने, सुख दायक जैसा दुलार दिया।
'हरे कृष्ण' चुका न कभी सकता जितना तुमने उपकार किया।[५२]

गुरु की सेवा करना भी कोई कृष्ण जी से सीखे। वे प्रतिदिन प्रातः उठकर गुरु दम्पत्ति की बन्दना करते और फिर बड़ी श्रद्धा से फूल तथा फल लेकर गुरुदेव के सम्मुख रख देता।[५३]

मित्रता में अमीरी और गरीबी का भेद नहीं होना चाहिये। समय आने पर यथा शक्ति मित्रों को एक दूसरे की सहायता करनी चाहिए। यह शिक्षा भी हमें कृष्ण जी के जीवन से मिलती है। आर्थिक दशा बिगड़ने पर सुदामा कृष्ण के पास सहायतार्थ जाते हैं और कृष्ण दिल खोल कर अपने मित्र की सहायता करते हैं।[५४]

कृष्ण जी के चरित्र में अनुपमेय गुण हैं। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति उनके व्यक्तित्व पर आकर्षित है। नन्द, यशोदा, राधा, कूबरी, अक्रूर, गोपियां, ग्वाल-बाल आदि सब उन पर मोहित होकर उनका गुण-गान करते हैं। कृष्ण को वे एक पल के लिये

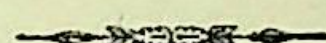
---

५०. कृष्णायन—पृष्ठ ३०
(कंस वध)
५१. प्रियप्रवास—५/४३-४६
५२. वंशी—पृष्ठ १७४
५३. वंशी—पृष्ठ—१९२

भी अपनी आंखों से ओझल नहीं रखना चाहते। अक्रूर जब कृष्ण को मथुरा ले जाने के लिये गोकुल आते हैं तो सब गोकुलवासी घबरा जाते हैं और भावी संकट की आशंका से ग्वाल-बाल उनके साथ मथुरा जाने के लिये तैयार हो जाते हैं। कृष्ण को बचाने के लिये उन्हें अपने प्राणों की भी कोई चिन्ता नहीं—

चलो संग तुम्हारे वहीं, मथुरापुरी वास बनायेंगे हम।
जननी। तुम भी अब शोच तजो, सब ग्वारिया साथ में जायेंगे हम।
यदि कंस की टेढ़ी हुई भृकुटी, लकुटी चला मार गिरायेंगे हम।
निज प्राणों की बाजी लगायेंगे हम, पर मैया कन्हैया बचायेंगे हम।[५५]

इस प्रकार श्री कृष्ण के चरित्र-चित्रण द्वारा आधुनिक कृष्ण-काव्यों के रचयिताओं ने एक ऐसा व्यक्तित्व प्रस्तुत किया है जिसका आधार लोक मानस की गहनतम परतों में स्थापित परम्परित रूप है, साथ ही वह, विविध नवीन उद्‌भावनाओं से संयुक्त होकर अर्वाचीन अपेक्षाओं की भी पूर्ति करता है।



५४. वही—पृष्ठ १९५

५५. वंशी—पृष्ठ १६१

मृत प्रश्न

सुभाष भारद्वाज

सड़क पर
बाएं से चलो
यहां मत थूको
वहां मत बैठो
खरचे में करो कटौती
जितना कट सके,
बचाओ इतना धन
जितना बच सके।
बचत स्कीमों,
बैंकों, सरकारी करज़ों
या फिर बीमा-कम्पनियों में
धन लगाओ ;
सन्तान
इतनी ही अच्छी
जितनी कम हो
बच्चे
अधिक मत जनो
बस एक या दो।

अपने अपने
भिखारी पिताओं के
बिगड़े राजकुमार
बीच बाज़ार
थूकते हैं
सड़क पर
दायें बायें छोड़कर
बीचों बीच चलते हैं

निषिद्ध समय पर
निषिद्ध स्थान पर
अवश्य जाते हैं
और दिन की कमाई
दिन में खाकर
रात को उधार की पीकर
सो जाते हैं
और बच्चे
लगभग दर्जन-भर
पैदा करके
बस करते हैं।

इन सरकारी
गैर-सरकारी
अर्ध-सरकारी
आदेशों, संदेशों
उपदेशों,
संकेतों, अनुरोधों को
कोई क्यों नहीं मानता
और इनके भीतर छिपे
अपने हित को
कोई क्यों नहीं पहचानता
यह एक प्रश्न है
बड़ा विकट प्रश्न

आदिम पिपासा

ललित मोहन शर्मा

जलता जिस्म
जागती जिज्ञासा
और / आदिम प्रणय-पिपासा
पहने प्लेटो का चोला
बोला मन प्रहरी सा
'मैं प्रणय का दूत,
विशेषण वैकुण्ठ का'.
वासना के वक्ष पर
आस्था से परिभूत
अलसाए बेसुध नयन.

जलन और जागृति
का मिलन / और सृजन.
कौन आलिंगन प्रत्युत्तर
मन के भाव-भ्रम का होगा ?
आए कैसे / और क्यों ?
गलियों के मोड़ / और

खींचे पर्दे शयन-कक्ष के
भोजन सुसज्जित / और
क्रम शौच का, दफतर /
दूकान या दलाल का.
चिल्लाना, रुलाना
अन्तयेष्टि वसीयत की
जलना जिस्म का
और हड्डियों का बहना है
नदी में नहाना है /
वैतरणी-रूपिणी-गंगा.

और आदिम प्यास
युगों से / शिलाओं पर चढ़ती
(प्लेटो के चोले मे थकती)
बढ़ती गई है / उत्सुक /
आलिंगन को ...

अस्तित्व की रेखाएं

अलंकार

शाम जब अन्धेरे और उजाले के बीच हिचकोले खाती है तो उसकी हालत अमृता प्रीतम के उस बच्चे के समान हो जाती है जिसके कमरे में दो चारपाइयां और एक पलना ·········एक चारपाई पर उसकी मां सोई हुई, एक चारपाई पर बाप और वह पलने से उतर कर कभी एक चारपाई पर जाता है कभी दूसरी की तरफ। ······अपनी छोटी सी हथेली से कभी सोई हुई मां के मुंह को टटोलता है, कभी दूसरी चारपाई की तरफ लौट सोए हुए बाप के मुंह को ·····पर दोनों में से कोई नहीं जागता। ······और फिर जब वह मां की चारपाई की तरफ से लौट कर बाप की चारपाई की तरफ मुंह करता है ······तो वहां चारपाई पर कोई नहीं होता और तब वह बिलख कर रो पड़ता है।

उसे लगता है अन्धेरे और उजाले की दो चारपाइयों के बीच खड़ा वह दोनों को एक साथ पकड़ने का प्रयास कर रहा है। लेकिन जब वह अन्धेरे की चारपाई को पकड़ने जाता है तो उजाले की चारपाई उससे दूर कहीं बहुत दूर खिसकती हुई गायब हो जाती है और उसके पास रह जाता है अन्धेरा······ सिर्फ़ अन्धेरा।

वह उठकर स्विच बोर्ड के सामने जाकर खड़ा हो जाता है यह सोचता हुआ कि बत्ती जलाकर यहीं बैठा रहे अथवा कहीं बाहर जाकर घूम आए। उसे याद आता है तीन सौ मील का सफर तय करके वह इसलिए यहां आया था कि घूम-फिर कर अपने आपको बाहर के वातावरण में खोल सके। अकेला, उदास, कटा हुआ तो वह अपने शहर में भी रह ही लेता था। ····· स्विच आन कर वह फिर कुर्सी में जाकर धंस जाता है। यहां आकर वह दो ही जगहें घेरे हुए था। कुर्सी पर बैठे-बैठे थक जाता तो चारपाई पर जाकर लेट जाता और जब वहां लेटे-लेटे थक जाता तो कुर्सी पर जाकर बैठ जाता जैसे चारपाई और कुर्सी दो बिन्दु हों जिससे उसके अस्तित्व को बांध दिया गया हो।

उसकी आंखें जमीन से ऊपर छत के पंखे की ओर चली जाती हैं और वह अपने पपोटों को पंखे के परों के साथ घुमाने लगता है। कुछ दायरों के बाद ही उसकी आंखें

फिसल कर छत को कुरेदती उस पार चली जाती हैं जहां उसे अतीत की परछाइयां बोझ बनकर सिर पर मंडराती दिखाई देती हैं। उसे महसूस होता है कि छत का बोझ उसकी उम्र के तीस वर्षों की तरह अनबूझे, अनचाहे उस पर लाद दिया गया है जिसे उठाने में वह अपने-आपको असमर्थ पा रहा है।

कुर्सी से उठकर वह कमरे में टहलने लगता है। आहिस्ता-आहिस्ता पैर पटकता पहले की देखी हुई हर एक चीज को एक बार फिर से देख डालता है। मेज से किताब उठा-कर उस पन्ने पर नजर स्थिर कर देता है यहाँ लिखा होता है 'समर्पित टूटते उस 'सम्बन्ध' को जिस सम्बन्ध में कोई रंग न था।' वह किताब बन्द कर के उसे फिर उसी तरह मेज पर रख कर कुछ पल खड़ा रहता है। तब बाहर निकलने की सोच खूंटी से कमीज उतार कर पहन लेता है। पहनने के बाद उसे पता चलता है कि उसने कमीज उल्टी पहन ली है। यह देखकर उसके माथे की रेखाएं परत दर परत अपनी जगह से सरकने लग जाती हैं। कमीज उतारकर वह फिर उसे खूंटी के हवाले कर चश्मा उतार चारपाई पर जाकर लेट जाता है।

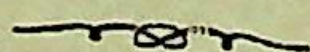
वह छत की ओर टकटकी लगाकर देखता है। उसे लगता है उसकी नजर बीच में ही कहीं फैल गई है और छत पर एक सफेद सी चादर लहरा रही है जिसमें गोल-गोल दायरे घूम रहे हैं। इन दायरों के बीच से निकलता वह अस्पताल के उस डाक्टर के पास जा पहुंचता है जिसने उसे कहा था कि उसे अब इससे मोटे शीशों की आवश्यकता है और वह यह बात वहां से बाहर निकलते ही भूल गया था। अस्पताल में भास्कर उसे डाक्कर की पोशाक में हाथ में स्टेथस्कोप पकड़े अपने पास से गुजरता दिखाई देता है जो उसे देखकर ऐसे मुड़ जाता है जैसे कभी ·· उसे महसूस होता है वह बहुत गहरे गहरे सांस ले रहा है।

एक बार फिर उठकर वह कपड़े पहनता है। स्विच बन्द कर ताला लगा कमरे के नीचे की सीढ़ियां उतरने लगता है— · एक···· दो······तीन ·· चार ···अचानक दोनों पैर कांपते हुए सीढ़ी पर रुक जाते हैं। वह बिना जूतों के ही नीचे उतर आया था। कदम फिर वापस मुड़ने लगते हैं। दरवाजा खोल सीधे कुर्सी पर जा बैठता है और निश्चय करता है कि कल सुबह ही वह वापस लौट जाएगा। फिर उसी शहर का उसी गली के उसी कमरे में — तब उसे दोनों कमरों में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। दिखाई देता है तो उसमें घूमता हुआ वह पुरुष जो सड़कों को फलांगता हुआ बहुत दूर निकल जाता है, वह 'कुछ' पाने के लिए जो उसे कहीं नहीं मिलता।

स्विचों को दबा वह माथे से पसीना पोंछता है और महसूस करता है कि भूख और प्यास उसके साथ जुड़ी हुई हैं। पहले की भांति ही बिस्कुट खा, पानी पी बत्ती बन्द कर धड़ाम से बिस्तर पर जा गिरता है। बाएं से दाएं और दाएं से बाएं करवट लेने के बाद

वह सीधे लेट कर छत की ओर देखता है जहां उसे कुछ घूमती हुई आकृतियां दिखाई देती हैं। सबसे पहले वह वसुधा के चेहरे को पहचानता है जिसे पांच साल पहले वह अपने साथ बांध कर लाया था और वसुधा ने दो साल बाद ही उस 'बांध' को तोड़ डाला था। वह चुपचाप उसी के दोस्त अमीन के साथ बंधने के लिए अलग हो गई थी। अपनी बेटी को उसने किसी और की गोद में डाल दिया था। वह यह सब खामोशी साधे देखता रहा था, सुनता रहा था। ···· और एक साल बाद ही जब अमीन ने किसी और से शादी करके उसे घर से बाहर निकाल दिया था तो वह फिर उसी के पास आंखों में आंसू लिए आई थी और······उसने उसके आंसू पोंछ दिए थे। ······लेकिन वसुधा के अन्दर कुछ ऐसा जम कर बैठ गया था जिसने उसे तीन महीने बाद ही आत्महत्या करने पर मजबूर कर दिया। ······वसुधा के साथ उसे अपना चेहरा दिखाई देता है जो कुछ साल पहले घण्टों स्टेज पर बिना रुके नाचता रहता था। वह चेहरे की जगह पैरों को देखता है जहां उसे घुंघरुओं की जगह लोहे की कड़ियां बंधी दिखाई देती हैं। अब वह स्टेज पर क्या कहीं भी नहीं नाच पाता। वह सोचता है उसके नाचने की यही उम्र है और यदि अब नहीं नाचा तो वह कभी भी नहीं नाच पाएगा। जिस वक्त तक पहुंचने के लिए उसने इतना अभ्यास किया वह वक्त आने पर उससे सब छूट गया। ······फिर उसे अमीन का जहरीला चेहरा दिखाई देता है जिसे वह झुंझलाहट में भर कर गर्दन हिला परे झटक देता है। उसके बाद कितने ही चेहरे उसके सामने आ खड़े होते हैं परन्तु वह किसी को भी पहचानने की कोशिश नहीं करता।

तब वह उल्टा लेट जाता है। मुट्ठियां कस कर कभी बिस्तर से कभी अपने जिस्म के साथ घिसने लगता है। उसे लगता है उसके दिमाग के सभी दरवाज़े बन्द हो गए हैं। दिल की धड़कन उसे घड़ी की टिक्······टिक्······की तरह सुनाई देती है। वह घड़ी देखता है······आठ······वह जानता है उसे इस समय नींद नहीं आती। वह रात के दो बजे से पहले नहीं सो पाता।



तीन कविताएं

रेखा जसवाल

(१)
मैं/छोड़ दूंगी
यह शहर
जहां
मौन-भरी उल्लसित चांदनी है
कांच पर सिर पटकती
तितली है
और
तुम हो !

(२)
तुम्हें सौगंध—
तुम
मेरा साथ छोड़ दो
मुझे
सांप की
नंगी पीठ
सहलाने का
मोह हो आया है ।

(३)
तुमसे कहने को
एक/यह भी है
कि गमलों में उगे कैक्टस
फूल देने लगे हैं
और
हर सिंगार
हार गया है ।

प्रीत पिया को गीत बने

पृथ्वीनाथ मधुप

हा व्वलो ! मुन्य हो वन्दु्ँयो पादन
आदन बाजि म्यानि यारो वे !……

वारूँ तारे आँखों के, तेरे चरणों पर
यौवन-सहचर ! पिया सलोने आ भी जाओ।—…

यह टेर है कश्मीरी की सुप्रसिद्ध कवयित्री "दर्द दिवानी" अरनिमाल की। अरनिमाल के हृदय में अपने निष्ठुर प्रियतम की पीर पली और वही उसके नयन-नीर के प्रवाह संग शब्दायमान हो गूंज उठी। यह वह गूँज है जिसने परवर्ती कश्मीरी काव्य पर अमिट प्रभाव डाला। ऐसा व्यापक प्रभाव जैसा कि कोई भी अन्य कश्मीरी कवि डालने में समर्थ न हुआ।

अरनिमाल श्रीनगर-बारामुल्ला मार्ग पर स्थित (श्रीनगर से लगभग १९ मील दूर) पलहालन* नामक गाँव में सन् १३३८ ई० में एक साधारण कश्मीरी पण्डित घराने में जन्मी। कश्मीरी पण्डितों की तत्कालीन प्रथा के अनुसार अरनि का विवाह बाल्यावस्था में ही श्रीनगर के रैणावारी नामक इलाके के एक कश्मीरी पण्डित युवक मुन्शी भवानीदास काचरू के साथ सम्पन्न हुआ। भवानीदास पठान दरबार से सम्बन्धित थे। वे एक अच्छे

---

* अरनिमाल का ही कथन है :—

"स्वनुँ ही पवजखय वनन तुँ क्रीडुँज़ालन
पलुँहालनुँ माल्युन छुये।"

अर्थात्—तू सोने की चम्पासी बनी और काँटेदार झाड़ियों में खिली।
तुम्हारा मायका पलहालन (नामक गाँव) में है।

राजनीतिज्ञ होने के अतिरिक्त एक अच्छे फारसी शायर भी थे। इनकी प्रसिद्ध कृति "बहरेतवील" है।

अपने ससुराल में ही अरनि ने बाल्यावस्था से यौवनावस्था में पदार्पण किया। यौवन की रंगीन उमंगों को हृदय में संजो अरनि का दिल अपने पीव की मोहक छवि पर न्योछावर हो गया। अपने प्राणप्रिय की एक-एक अदा कवयित्री के हिय में शत-शत स्वर्गों का सृजन करती गई। उसे अपने जीवनसाथी की मधुर मुस्कान में अनन्त वसंत, वाणी में कोयल का पंचम और छवि में असंख्य रतिपतियों का आभास हुआ। प्यार के अनन्त अतल में डूब-डूब उसने अपना सर्वस्व अपने प्राणेश पर वार दिया। पर विधि की विडम्बना यह रही कि जितनी ही अरनि भवानीदास की ओर आकर्षित हुई उतना ही वह उससे दूर रहने लगा। इस पठान दरबारी को उस भोली ग्रामबाला में कुछ भी आकर्षक न लगा। दरबारी वातावरण का अभ्यास होने के नाते इस अन्तर्मुखी व्यक्ति को अरनि के अकृत्रिम लावण्य तथा भोले सौंदर्य में कोई रंगीनी दिखाई न दी। अरनि के कवि-हृदय ने इस बात को तुरन्त ताड़ लिया और वह अपने पिया की तुष्टि के हेतु अपने आपको दरबारी रंग में रंगने का प्रयास करने लगी। उसने मौसीकी (संगीत) भी सीखी और बहुत सी अन्य चीज़ें भी जो दरबारी जीवन से सम्बन्धित होती हैं पर ऐसा करने पर भी वह अपने पति की दृष्टि को अपनी ओर आकृष्ट करने में असमर्थ रही। हृदयों की दूरी कम होने की अपेक्षा बढ़ती ही गई और एक दिन ऐसा भी आया जब निष्ठुर पति ने पत्नी को त्याग दिया।

अपने जवाँ अरमानों के गले पर कुन्द कटार रख और विरह की तीव्रतम आग अपने सुकुमार सीने में सम्भाले असहाय अरनि प्राणप्रिय द्वारा ठुकराये जाने पर अपने पिता के पास पलहालन ग्राम पहुंची। दु:ख-सागर में डूबी अपनी प्यारी बेटी को मां-बाप ने प्रसन्न रखने की भरसक चेष्टा की पर सारा वातावरण ही तो अरनि का बैरी हो गया था अत: उनके सभी प्रयत्न बेसूद रहे। कुसुमों का मुस्कराना, पक्षियों का मधुर-संगीत, सरि का झर-झर और बदली की फुहार आदि अरनि को चिढ़ाने लगी; उसके मन की विरहाग्नि में घी डालने लगी। वह खोई-खोई सी रहने लगी। पिया-पीर से किञ्चित् छुटकारा पाने के हेतु उसने चर्खे का आश्रय लिया। चर्खे का चक्र घूमता रहा और अरनि के अन्तर में अपने मन-बसिया के साक्षात्कार के स्वप्न भी पलते रहे। पूनी से धागा जितना लम्बा होता जाता उससे शत-शत गुणा गहरे वह प्राणप्रिय के स्मृति-सागर में डूबी जाती। अरनि प्राणाधार के चिन्तन में अपने अस्तित्व का बोध ही खो देती। कभी कभार जब उसे क्षणभर को अस्तित्वज्ञान हो भी जाता तो उसे चर्खे की गूँ—गूँ—गूँ जैसी ध्वनि खलने लगती। वह प्रियतम के अतिरिक्त कुछ भी सुनना और सोचना नहीं चाहती थी। इसी कारण अपने चर्खे से भी वह चुप रहने का और एतदर्थ उसे रिश्वत देने का वचन देती :—

गूं गूं मा कर हा ! यन्दुॅरो
कनुस्यन ति फलिलाह मला'यो…

मत शोर मचा मत शोर ओ रे चर्खे !
चमरख को तेरे फुलेल मैं मल दूँगी।
शीश उठाओ सुम्बुल* ! नीचे माटी के
बाट जोहती तेरी नर्गिस भरा चषक ले
बेला हूँ मैं फिर (दर्शन से) कुसुमित हूँगी ॥

अरनि "आठ पहर चौसठ घड़ी" अपने पिया के ध्यान में रहती। उसी बेदर्दी के चिंतन में घुलती रहती। उसका रोयां-रोयां प्रियतम के प्यार से छका रहता। दिन का चैन और रातों की नींद उससे छिनी थी। उसे प्रियतम के नयन-बाणों की सुधि आती थी जिसने उसके हृदय को छलनी कर डाला था। अपने घायल हिया में वह बार-बार यही सोचती रहती कि कहीं उस निर्दयी को मेरे प्यार पर कोई सन्देह तो नहीं ? अतः वह उस निठुर को अपना कलेजा तक चीर कर दिखाने को तैयार हो जाती। अपने यौवन-सहचर के साथ के अभाव में उसे स्पष्ट दिखाई देता कि वह जी नहीं सकेगी अपितु शरद्-काल के पत्तों की भांति झड़ जायेगी। ऐसे ही अनेक विचारों की ऊहापोह में वह पुकार-पुकार उठती :—

हन हन छम लोलुँ चानि बरिथ
ज्वलुँ छम नो स्वन्दरे स्वन्दरे……

रोम रोम में है प्यार भरा तेरा
तुझ बिन इन आंखों में लो नींद कहां ?
तीर नजर के मारे हैं तुमने मुझ पर
इस हिय को छलनी कर डाला।
विरह रोगिनी कैसे धाऊं यहाँ वहाँ ?
चीर हृदय अपना दिखलाऊंगी तुमको
तुझ बिन झर जाऊं पतझर के पातों जैसी।
कंगन-सा गह लूँ हेरूं तुमको जहाँ जहाँ।
तुझ बिन इन आंखों में लो नींद कहाँ ?

विरह-शरों से बिंधे उर वाली पिया-प्रीत से बावरी हुई अरनि के लिये प्रियतम की दूरी असह्य हो गई। एक-एक पल उसके लिये एक-एक कल्प के समान हो गया। हृदय का असीम विषाद आंखों के रास्ते टपकने लगा। गंगा-यमुना के प्रवाह का यह हाल कि वह क्षणमात्र के लिये भी रुकने का नाम नहीं लेता। हा दुर्भाग्य ! दृग नीर-धाराओं के सर्जक हैं और छाती नमरूद का अग्नि-कुण्ड बनी हुई है—'नयनों' में वरुणदेव और हृदय में अग्निदेव का राज है ! पानी भी आग के लिये तेल का काम करता है। अरनि

---

* एक पुष्प विशेष।

विरहाग्नि की लपटों में भस्म होने को है अतः उसकी सहन-शक्ति जवाब देकर पुकार पुकार उठती है कि यदि पीव इस समय न आयेंगे तो फिर कब आयेंगे ? क्या वे उस समय आयेंगे जब मैं क्षार-क्षार हो जाऊंगी—

पद्मानि अदुँकर यियम तय ?
वदुँनस छुमनय छ्यन.........

आयेंगे कब प्राणप्रिय—
मुझ पद्मिनी के पास ?
अश्रु बहते जा रहे—
झड़ियाँ लगीं दृग-नीर की हैं।
भूल जाऊं इस विरह की पीर !
कैसे ?
उस निठुर ने आग में झोंका
कि जलती जा रही हूं
और अविरल नयन-जल तो बह रहा है।

अश्रु-कणों की वर्षा बरसाते अरजि के मन में यह विचार जन्मा कि किस घोर पाप के दण्ड के रूप में उस निर्मम ने मुझे त्याग दिया। कौन कसूर किया था मैंने ? वह बेपीर अन्यों के साथ विहार कर रहा है। इस बात को सोचते ही मेरा दिल खंड-खंड हो जाता है और मारे पीर के खाना-पीना भी हराम हो गया है। खाने-पीने की मुझे कोई चिन्ता नहीं, कोई इच्छा नहीं। इच्छा केवल यही है कि वे मुझे अपने दरस के अमिय का एक घूंट ही पिला दें। सखी री ! जा तू ही उस निष्ठुर से पूछ कि मेरा दोष क्या है—

जार वनतसी हा व्यसी !
बालि राह क्याह छुमय.......

जा सखि उनके पास बता—
मैंने क्या अपराध किया,
निष्ठुर अन्यों साथ रहा
सुनके मन यह हाय ! दहा—
(तरल गरल का घूंट पिया !)
भूख प्यास की फिक्र नहीं
केवल दर्शन-साध रही
साथ रहे प्रिय : (प्रमन जिया।)
मैंने क्या अपराध किया ?

अरनिमाल को प्रेम की पीर अत्यन्त व्याकुल बना देती है। वही प्रेम की पीर जिसने पर्वत-शिलाओं तक को भी क्षार कर दिया, जिसने बड़े-बड़े शूरों को कहीं का भी न रहने दिया। वही प्रेम की पीर—विरहज्वाल—अरनि के अंग प्रत्यंग को तिल-तिल जला रही है। इस आग को उद्दीप्त कर रही है उसकी यह भावना कि उसका प्राणप्रिय अन्यों के साथ विहार करता है। इस पर सौतें उसे ताने देती हैं पर वह निर्मम उसे कहीं भी मिल नहीं पा रहा—

स्वनुँ छम गेलान कुनि छुम न मेलान
परद्यन सूँत्य छुम खेला'नी·········

व्यंग्य-बाण से बेधतीं सौतें
कहीं न मिलते पीव—
हाय ! वे औरों के संग विचरण करते !
पर्वत की चट्टानें दहतीं प्रीत प्यार से
प्रीत-पीर से शूरवीर भी आहें भरते
नेह कसक तो हाय टीसती अंग अंग में।

"कहीं न मिलते पीव" यह भाव अरनि को पगला देता है। आखिर वह कब तक प्रतीक्षा करे ? इस भावना को हृदय में छिपाये कब तक बैठी रहे ? वह मानवी है और दुर्भाग्य से उसके सीने में बहुत ही भावुक औरत का दिल है, एक औरत का ही नहीं एक कवयित्री का सुकुमार हिया। वह इतनी अवश हो जाती है कि कपड़े फाड़-फाड़ इस बात को ऊंचे स्वर में घोषित करना चाहती है कि "उस कुसुम सरीखे छवि वाले ने मुझसे अपना मुखड़ा छिपा दिया। हा ! क्या करूं उसने मुझे प्यार के ताने सुनाने के लिये त्याग दिया"।

अरनि को यद्यपि अपने निर्मम पिया ने छोड़ दिया है फिर भी उसे आशा है कि प्रियतम मुझे अवश्य कभी न कभी दरस देंगे ही। वह कहती है "मैं सावन की चम्पा-सी पर विरह ने मुझे अरनि पुष्प के वर्ण का (पीला) कर दिया है। मेरी इस हालत को देख मेरे प्रियतम अब मेरे पास आकर कब दर्शन देंगे। उस मोहक छवि वाले के लिये ही मैंने कितने ताने सुने। विरहाग्नि ने मुझे अधजली कर दिया। (इतने कष्ट उठाये उसके लिये, अब) उसे मेरा सन्देशा कौन पहुंचाये ······

प्रियतम को अपने पास बुलाने के लिये अरनि अपनी सखियों से यूं सम्बोधित हो जाती है :—

म्ये शोकुँ यारुँसुँन्दि बर्य मस प्यालुँतुँ
आलव दीतोसे !··················

प्रिय के लिये भरे मधु प्याले
री सखि उन्हें बुलाओ तो ।।
जहाँ कहीं भी बैठे हों वे—
मेरी यह मनुहार—
शैल तराई के आंचल या मैदानों के पार
पहुंचे उनके पास सुनें वे—
मेरी करुण पुकार ।
हां, मंगल कामना नेहमय—
सखि उन तक पहुंचाओ तो ।।

उछल उछल चंचल मृग से वे
चले गये किस ओर ।
मुझे अकेली छोड़ न जाने—
जाऊं अब किस ठौर ?
छाया तम जीवन में मेरे—
आते ही क्यों भोर ?
मेरी इस गीली वाणी को
कोई उन्हें सुनाओ तो ।।

सजा रखे मैंने कितने ही,
मधु मिश्री के थाल
पहुंचा दो लघु भेंट उन्हें री,
कर लो मुझे निहाल ।
मेरे अंग अंग में सिहरन—
होती है इस काल ।
कैसे विरह व्यथा मैं सह लूँ
उनको यह समझाओ तो ।।

कुल मिलाकर अरनि के गीत वेदना से सने हैं और हैं अतीव प्रभावोत्पादक । ये पीड़े अन्तर से निकले हुए उद्गार हैं । इनमें कमाल की प्रेषणीयता है जो पाठक के मन पर एक विचित्र प्रभाव की उत्पत्ति करके एक विरले ही वातावरण का सृजन करते हैं ।

अरनि के गीत अभी तक संग्रहीत नहीं किये गये हैं । कश्मीरी के काव्य रसिकों एवं विद्वानों को चाहिये कि वे अरनिमाल के गीतों का एक प्रामाणिक संग्रह तैयार करें । राज्य की ललितकला एवं साहित्य अकादमी ने जहां हब्बाखातून, परमानन्द तथा शेख नूरुद्दीन आदि कवियों के संकलन प्रकाशित किये हैं वहां अरनिमाल के काव्य सकलन को भी प्रकाशित करे ।

कहा जाता है कि सुमधुर कश्मीरी नेह-गीतों की सर्जिका अरनिमाल का देहान्त १३७८ ई० में हुआ ।

वसन्त : दो कविताएँ

रवीन्द्रनाथ त्यागी

एक

चाँदनी की साड़ी पहिन
दिशा की सांवली लड़की
लेट गई नदी के गलीचे पर ;
वृक्ष वृक्ष
रंगों के दीप जले
फूल खिले

धूप हो गई सोने की
रात हो गई चांदी
तुम हो गईं और सुन्दर ;
वनों में वहाँ दूर—
पात पात
गात गात
हवा हिले

हो गया इतना सब कुछ
तन गया वासना का धनुष ;
पर वसंत जो था—
वह नहीं आया ;
किन समुद्रों में फँस गई वह नाव
जिसके यात्री सब उतर पड़े ?

दो

फूलों की सीटियाँ बजाता
वसन्त फिर आ गया

कब्रों में दफन संगमर्मर की हड्डियाँ
नहीं देख पाएंगी उसे ;
जिन शरीरों के ऊपर फूल खिले
उन फूलों को वे ही रूपवान शरीर
अब देख नहीं सकते

वसंत का सच्चा गीत
सिर्फ उदासी का गीत !
एक दिन तुम मेरी यह बात मानोगी

हास्य - व्यंग्य

पुरानी कविताई में माडर्न नारी समाज

के० पी० सक्सेना

पिछले दिनों साहित्य में काफी धर पटक हुई है। ···काव्य में कहानियां लिखी गई हैं और कहानियों में दोहे पिरोये गये हैं। कुछ पाजामाई शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे—'राहतकार्य', 'तकावी-वितरण', 'बुनियादी सिद्धांत', 'अदालती पक्ष' आदि। मैं इन शब्दों को 'पाजामाई' इस लिए कहता हूं क्योंकि नीचे से अलग होते हुए भी (आधी उर्दू, आधी हिन्दी) ये ऊपर जा कर एक हो गए हैं। ·· पाजामाई शब्द अगर काफी धुले और कलफदार हों तो देखने सुनने में अच्छे लगते हैं। ·· साहित्य की इसी सामयिक धर पकड़ में कुछ महीन तत्व मेरे हाथ भी लगे हैं। काश मैं एम० ए० हुआ होता तो तुरन्त पी० एच डी० गढ़वा लेता। एम० एस सी० वालों को हिन्दी में डाक्ट्रेट देने पर हमेशा बुनियादी विरोध होता आया है। खैर, थीसिस वगैरह की लालच में पड़े वगैर ही मैं अपना मौलिक चिन्तन साहित्य की छात्राओं को सौंप रहा हूं ताकि वे लाभ उठा लें। ···सामग्री मूल रूप से छात्राओं के भले की है। ···छात्रवर्ग आनन्दित हो लें, यह अलग बात है!···

मेरी रिसर्च यह है कि मैंने पुरानी कविताई को चिन्तन की कड़ाई में चढ़ा कर छानबीन की धीमी आंच पर पकाया है और दो तार का पाग बनते ही आधुनिक दिशाबोध की चाश्नी हासिल कर ली है। ·· क्या यह मामूली उपलब्धि है कि कोई साबित कर दे कि श्याम दीवानी मीरा के टाइम में भी बेलबाटमें पहनी जाती थीं? तुलसी युग में भी 'नाइटी' और 'पैरेलल' चलते थे?

मैं जो कुछ कह रहा हूं, साधिकार कह रहा हूं। रहीम और रसखान के टाइम में भी 'वूमनलिब' का जोर था। मिसाल के तौर पर कुछ मिसालें पेश कर रहा हूं जो मेरे कथन की पुष्टि करेंगी :—

कालेज टाइम में रमी खेलती हुई एक बाला को देख कबीर दास जी गदगदा उठे थे। बोले—

'कबीर पढ़िबा दूर करि, पुस्तक देई बहाइ।
बावन आखर सोधि करि, ररै ममै चित लाइ ॥'

यहां बावन आखर से मतलब बावन पत्तों से है। 'ररै ममै' का इशारा 'रमी' की ओर है। ...बाकी बात साफ है।...

और यह देखिये। एक आधुनिका माता 'फिगर' के बिगड़ने के डर से बच्चे को 'फीडिंग' नहीं कराना चाहती। वह भगवान् से प्रार्थना कर रही है कि बच्चा किसी प्रकार दूध की सुध छोड़ दे। तुलसी के शब्दों में—

'नाथ करेहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिय न कोहू ॥'

कविवर नरोतमदास जी ने दफ्तर से आये हुए साजन पर यों लिखा है—

'पोटरी कांख में चाँपि रहे तुम, खोलत नाहीं सुधा-रस-भीने।'

अर्थात्, हे डियर! तुम बगल में दबा हुआ साड़ी का बंडल क्यों नहीं दिखाते जिसमें लेवेण्डर की महक बसी हुई है?...

कविवर रहीम सन् १६३० में ही हास्पिटल में हुई एक डिलीवरी को कविता में पिरो गये हैं। ...कहते हैं कि कैसा प्यारा अचम्भा है। ...मेम साहिबा को पहली डिलीवरी अस्पताल के प्राइवेट वार्ड में हुई है और साहब के बंगले के दरवाजे पर रेकार्ड-प्लेयर बज रहा है। ...पार्टी चल रही है।...

'देव हंसे अपनी अपना बिधि के परपंच न जात बिचारे।
बेटा भयो बसुदेव के धाम और दुंदुभि बाजत नन्द के द्वारे ॥'

हां, एक खुशखबरी और है! मेम साहब को मेलचाइल्ड हुआ है।

उधर बिहारी लाल जी ने बुढ़ापे के 'मेकअप' पर बड़ी प्यारी पंक्ति कही है। ...बिहारी लाल बड़े रसिया थे। ...प्रौढ़ा छवि यों बखानी है—

'या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यौं ज्यौं बूड़े स्याम रंग, त्यौं त्यौं उज्जल होय ॥'

अर्थात्. हे रिटायर्ड प्रीतम! तुम इस प्रौढ़ा मन का रोमांटिक मूड क्यों नहीं समझते? ...मेरे इस गोरे चेहरे पर ज्यों ज्यों बुढ़ापे की काली झाईयां बढ़ रही हैं, मेरा मन उतना ही 'फ्रेश' होता जा रहा है।

और नमूना देखिये! कविवर दीनदयाल ने एक नई नई ब्याही पर काव्य पढ़ा है। ...नवविवाहिता की सहेली उसके पिया के घर मिलने आई है। सहेली मेज पर चुने हुए

फूलों को देखकर कहती है कि तू वह दिन भूल गई जब बासी परांठे लेकर कालेज आती थी ? ···कहते हैं—

'बरनै दीनदयाल, बड़ाई है सब तिनकी।
तू झूमै फल भार, भूलि सुधि को वा दिन की ॥'

गिरिधर कविराज ने एक विवाह योग्य कन्या को उपदेश देते हुए लिखा है—

'कह गिरिधर कविराय, छांहं मोटे की गहिये।
पाता सब झरि जाय, तऊ छाया में रहिये ॥'

अर्थात्, हे बेबी ! रोमांटिक युवक के चक्कर में पत पड़। कोई नौजवान नेता ढूंढ कर कोर्टशिप चला। काहे, कि उसके बैंक-बैलेंस, सोना आदि छिन भी गया तो भी बिजनेस शेयर्स, मकानों का किराया, गल्लाफार्म आदि ही इतना काफी है कि तू सुख में मौज करेगी। ···सो तू कोई नेता या नेता पुत्र ही ढूंढ !···

एक और नमूना पेश है। भारतेन्दु बाबू ने क्या कहा है ? डिनर से देर करके लौटने पर साहब अपनी वाइफ को सख्त-सुस्त कहते है। वाइफ बिफर उठती है। उसे साहब की सारी रासलीलाएं मालूम हैं। वह मुंह नहीं खोलना चाहती, सो कहती है—

नाथ तुम अपनी ओर निहारो।
हमरी ओर न देखहु प्यारे निज गुन गनन विचारो ॥'

सो माताओ और बहनों ! इतनी मिसालें मैंने नमूने के तौर पर दी हैं। ···मैं एक पूरा शोध ग्रन्थ तैयार कर रहा हूं जो सिद्ध कर देगा कि पांच सौ साल पहले का नारी समाज भी उतना ही 'अल्ट्रामाडर्न' था जितना आज है। ···प्रतीक्षा करें।



हस्ताक्षर नए नए

संस्कृत नाटकों में चित्रित मां का स्वरूप

अरुणा नागर

मानव हृदय की रागात्मक अनुभूति विशेष का नाम वात्सल्य है। संस्कृत नाटकों में इस प्रकार की अनुभूति से संवलित वत्सला माताओं का चरित्र बड़े उभरे रूप में देखने को मिलता है।

मातृ-हृदय की प्रत्येक भावोर्मि की गत्यात्मकता उसके वात्सल्य की परिचायक होती है। अभिज्ञानशाकुन्तल में बालक भरत अपनी मां शकुन्तला से दुष्यन्त के विषय में जब पूछता है कि 'मां यह कौन है'? उस समय अत्यन्त दुःखी होती हुई वह मन ही मन सोचती है— अरे! यह पिता-पुत्र का सम्बन्ध भी कैसा सम्बन्ध है? यह दोनों एक दूसरे से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। उत्तर देते हुए वह कहती है 'पुत्र यह अपने भाग्य से पूछ'। इस वाक्य में मां के हृदय की कितनी वेदना छिपी है इस विषय में वह क्या बताये? विधि का विधान ही ऐसा है कि बाप-बेटा दोनों एक दूसरे से अनभिज्ञ हैं। राजमहलों में रहकर पलने वाला मेरा बेटा आज पितृस्नेह से वञ्चित होकर वन में भटक रहा है। धन्य हैं वह बच्चे जो पिता की गोद में खेलते हैं और एक यह भी बच्चा है जिसे पिता का ज्ञान ही नहीं है।

मां की सन्तान के प्रति निरन्तर त्यागशीलता मानव के त्याग की कहानी में सर्वोपरि है, उसके मार्ग में आने वाले अवरोधों पर विजयशीलता माता के निःस्वार्थ हृदय के त्याग की गाथा है। 'मृच्छकटिकम्' में बालक रोहसेन सोने की गाड़ी से खेलने के लिए हठ करता है तथा मिट्टी की गाड़ी से खेलने के लिए फुसलाये जाने पर भी वह अपने हठ पर अडिग रहता है। वसन्तसेना उसके हठ से द्रवित हो जाती है। उसके भोले और सुन्दर रूप को देखकर दयार्द्र हो वह अपने सब आभूषणों को उतार कर बालक की मिट्टी

की गाड़ी को भर देती है और अत्यन्त स्नेहपूर्ण शब्दों में बालक से कहती है कि वह उनसे सोने की गाड़ी बनवा ले[1]। वसन्तसेना यद्यपि अविवाहिता स्त्री है, तो भी बालक के प्रति उसके हृदय में मातृसुलभ स्नेह है। मातृस्नेह से ओत-प्रोत हो वह बालक के हठ को पूर्ण करने में अपना गौरव समझती है। क्योंकि प्रत्येक मां को बच्चे की जिज्ञासा शान्त करने में ही अपने मातृत्व की सार्थकता दिखाई पड़ती है।

जीवन के विस्तृत क्षेत्र में मानव को जब अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ता है तब मां ही उसकी प्रेरणा बनकर पथ-प्रदर्शन करती है। दुःख के क्षणों में मां ही उसका सहारा बनती है। सन्तान पर दुःख आने पर मां ही आगे बढ़कर उसे सबसे पहले अपने ऊपर लेती है। नागानन्दनाटक' में गरुड़ के भोजन के लिए शंखचूड़ की बारी आने पर मां अत्यन्त करुण विलाप करते हुए कहती है—सैंकड़ों मनोरथों के उपरान्त मिलने वाले हे पुत्र! मारे जाते हुए तुम्हें आज मैं कैसे देखूंगी[2]? मां की ममता का कैसा उत्कृष्ट उदाहरण है। उसकी आंखों के सामने उसका पुत्र मारा जाये और वह जीवित रहकर यह सब देखती रहे। यह कैसे सम्भव हो सकता है? वह गरुड़ से प्रार्थना करती है कि उसके पुत्र के बदले में उसे ही मारकर अपना आहार बना ले क्योंकि वह पुत्र का दुःख सहन करने में समर्थ नहीं है।

मां के हृदय की उत्कण्ठा उसके स्नेह और औत्सुक्य की प्रतीक है। भासरचित 'बालचरित' में अनिष्ट की आशंका से व्याकुल देवकी वसुदेव से एकदम पूछती है कि आप इस बालक को कहां ले जा रहे हैं? वसुदेव उत्तर देते हुए कहते हैं—यह तो मुझे भी नहीं मालूम कि मैं इसे कहां ले जा रहा हू? जहां भाग्य ले जाये वहीं बालक को ले जायेंगे। यह सुनकर देवकी वसुदेव से क्षण भर रुकने के लिए कहती है जिससे वह जी भर पुत्र का मुंह देख ले। मां का हृदय सन्तान का अपनी आंखों से ओझल होना सहन नहीं कर सकता, बार-बार देखने पर भी उसका हृदय अतृप्त ही रहता है।

'प्रतिमानाटक' में भरत जब मन्दिर में अपने पूर्वजों की प्रतिमाएं देखते-देखते पिता की प्रतिमा को देखते हैं तो वह मूर्च्छित हो जाते हैं। मातायें बड़े स्नेह से सान्त्वना देती हैं। सन्तान के लिए मां का हस्तस्पर्श प्यासे के लिए जलधारा के समान हुआ करता है क्योंकि कष्टदायक स्थिति में मां ही उसका सहारा होती है। संसार में मां के स्नेह के समान अन्य कोई वस्तु नहीं है।

मां का हृदय अत्यन्त विशाल व कोमल होता है। एक बार याचना करने पर ही द्रवित हो जाता है। वात्सल्य के वशीभूत मां कैकेयी भरत को अपने पांवों से ऊपर उठाते

---

१. मृच्छकटिकम्, षष्ठ अंक, गद्य भाग, पृ० ३२१.

२. नागानन्दनाटकम्, चतुर्थ अंक, श्लोक ८ गद्य भाग, पृ० १५३.

हुए कहती है, भला ऐसी कौन मां होगी जो अपने पुत्र का अपराध क्षमा न करे। इससे पता चलता है कोई भी मां ऐसी कठोर हृदय नहीं होती जो बच्चे के क्षमा याचना करने पर क्षमा न करे।

'मञ्जुलमञ्जरी नाटक' में वात्सल्य से ओत-प्रोत मां राम के वन जाने पर विलाप करते हुए कहती है—राजमहलों में रहने वाले तुम व्याघ्र इत्यादि दुष्ट जीवों वाले तथा तीक्ष्ण कांटों से भरे हुए वन में किस प्रकार रहते हो ?

'रामवनगमन' में रामवनगमन के विषय में सुनकर माता कौशल्या भगवान् से प्रार्थना करती है कि उससे यह वज्रपात (पुत्र-वियोग) सहा नहीं जाता। उसका मुख देखे बिना वह क्षणमात्र भी जीवित नहीं रह सकती। सन्तान का बार-बार चुम्बन व आलिंगन करने पर भी मातृ-हृदय अतृप्त ही रहता है। वह पुत्र को इस प्रकार की कष्टदायक अवस्था में देखने से पहले ही मर जाना अच्छा समझती है।

'वेणीसंहार' में दुर्योधन जब पुनः पांडवों से युद्ध छेड़ना चाहता है तो माता गान्धारी अनिष्ट की आशंका के भय से व्याकुल होकर उसे युद्ध करने से रोकते हुए कहती है—'पुत्र ! तुम निस्सहाय हो। कौन तुम्हारी सहायता करेगा ? युद्ध में तुम्हारे सभी भाई, बन्धु, मित्र इत्यादि मारे जा चुके हैं और तुम्हीं एकमात्र मेरा सहारा बचे हो, इसलिए मैं तुम्हें युद्ध की आज्ञा नहीं दूंगी।' क्योंकि मां का हृदय अत्यन्त शंकालु प्रवृत्ति का होता है, वह अनिष्ट की आशंका से शीघ्र ही व्याकुल हो जाती है।

'मालविकाग्निमित्र' में रानी धारिणी अपने बेटे वसुमित्र के पराक्रम के विषय में सुनकर कहती है—'सेनापति जी ने मेरे बच्चे को बड़े कठिन कार्य का भार दिया है।' मां की दृष्टि में उसका बच्चा चाहे बूढ़ा भी हो जाये उसके लिए वह छोटा ही रहता है। वह सदा उससे बच्चे की तरह स्नेह करती है। प्रत्येक मां का सन्तान की दीर्घायु के लिए प्रार्थना करना तथा उसके निमित्त दान इत्यादि देना प्रायः देखा जाता है। रानी धारिणी भी पुत्र की दीर्घायु के लिए प्रतिदिन अठारह सुवर्ण मुद्रा दक्षिणा के रूप में ब्राह्मणों को बांटती थी। गुणशाली पुत्र की मां होना बड़े गर्व की बात समझी जाती है। पुत्र के विजयी होकर लौटने पर वीरमाता की उपाधि से गौरवान्वित हुई मां अपना अहोभाग्य समझती है। उसकी सदा यह कामना होती है कि उसका बच्चा प्रत्येक कार्य में विजयी होकर लौटे।

उपहार

राजेन्द्र बिन्द्रा

तुम्हें जीवन की कौन सी मिठास दूं।
खिलती हुई सुबह दूं या कोई शाम उदास दूं।

मैं रिक्त नहीं भरपूर हूँ।
मैंने खुशियां सिरहाने रखकर, गम को गले लगाया ;
थपकियां दे दे चाहों को सुलाया, दर्द को जगाया।
तुझे अब अश्क दूं, उच्छ्वास दूं, या कोई कोमल हास दूं
तुम्हें जीवन की कौन सी मिठास दूं।

मैं रिक्त नहीं भरपूर हूँ।
हिम का शीत मुझे भाया, तो ताप मांग जीवन सुलगाया।
ऋतु को कभी न मैंने पूछा, कभी हंसाया कभी रुलाया।
तुझे झरझर पतझड़ दूं, बहकता या मधुमास दूं
तुम्हें जीवन की कौन सी मिठास दूं।

मैं रिक्त नहीं भरपूर हूँ।
मैंने चिनार के सूखे-सुर्ख पत्तों को प्यार किया ;
दामन में भरकर उन्हें चूम लिया दुलार किया।
तुझे फूलों का सुवास दूं ; या कांटों की चुभन का त्रास दूं
तुम्हें जीवन की कौन सी मिठास दूं।

मैं रिक्त नहीं भरपूर हूँ।

बीते कितने भीड़ में ओझल दिन, नींद से बोझिल रातें ;
सावन को तक-तक हर क्षण को—मरु-दग्ध की शीतल बातें।
तुझे दो घूंट पिला दूं अमृत के; या तड़पाने को प्यास दूं
तुम्हें जीवन की कौन सी मिठास दूं।

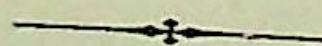
मैं रिक्त नहीं भरपूर हूँ।

मैंने प्राणों में मरण का आह्वान किया कई बार ;
तुझे अपनाकर स्वत्व का दान दिया कई बार।
तुझे जगह दूं अपनों में, या सपनों में वनवास दूं
तुम्हें जीवन की कौन सी मिठास दूं।

मैं शकल-युगल भरपूर हूँ।

हर पथ से आता जाता हूँ, दुर्गम कहीं, कहीं सुगम हूँ।
बूंद-बूंद से धार-धार का चतुर्दिक् मैं संगम हूँ।
तुझे मृत-जीवन के श्वास दूं, या अमर मरण को आस दूं
तुम्हें जीवन की कौन सी मिठास दूं।

खिलती हुई सुबह दूं या कोई शाम उदास दूं।
तुम्हें जीवन की कौन सी मिठास दूं।



अंत लीला

अजित पुष्कल

बरसात खत्म होते ही क्वांर का महीना आ जाता है। धूप चटख हो जाती है। फसली बुखार के दिन आ जाते हैं। कौओं की कांव कांव बढ़ जाती है। तभी मुझे अपना छोटा सा कस्बा याद आता है। उसकी कुछ खास चीजें जरूर याद आती हैं। मसलन वहां की कच्ची गलियों का अधसूखा कीचड़। उस पर उड़-उड़ कर बैठने वाले छोटे पंखों वाले रंग-बिरंगे बेहने। लाल मखानों की झाड़ियां। धूप में उड़ती तितलियां। सड़कों पर मंदगति से पागुर करती हुई चलने वाली गायें। उनका रंभाना। पग्गड़वाले वैद जी। गप्पी हलवाई। इनके साथ ही याद आती है वहां की मशहूर रामलीला। जिसके कारण एक माह तक चुहल रहती है। कस्बे के लोग रात-रात भर बैठकर रामलीला देखते हैं। सहसा कानों में रामायण पाठ की सुरीली अनुगूंज टकराने लगती है। मैं प्रतीक्षा करने लगता हूं कि दशहरे की लम्बी छुट्टियां शुरू हों और मैं घरियाए बैल की तरह भाग जाऊं वहां।

इन दिनों रामलीला मैदान की रौनक ही दूसरी होती है। पहले फाटक के पास पान की दुकानें सजी होती हैं। बड़े-बड़े आइने लगे होते हैं। पान की ढेरी के ऊपर सफेद फूलों के गजरे पड़े होते हैं। मूंगफली, रेवड़ी के ठेले खड़े होते हैं। चटपटे वाले खोमचे होते हैं। उनमें मिट्टी के तेल वाली बड़ी कुप्पियां जला करती हैं जो ढेर सारा धुआं उगलती रहती हैं। बिजली की चमक-दमक के बीच ये टिमटिमाती कुप्पियां मुझे अच्छी लगती हैं। पहले फाटक से ही रामजी का मंच दिखलाई देता है। मूर्तियों पर चांदी का चंवर डुलाते हुए सेठ मोंगीराम दिखाई पड़ते हैं। करीब पच्चीस वर्षों से मैं उन्हें एक जैसा ही देख रहा हूं। कैसा नियम, संयम, आहार है कि उनकी उमर एक जगह ठहर कर रह गयी है। फिर स्त्रियों वाली पट्टी। उसकी विपरीत दिशा में पुरुषों वाली पट्टी। दोनों को अलग करने के लिए रस्सियां बांध दी गयी हैं। दर्शकों को पीछे ठेलने के लिए स्वयंसेवक तैनात हैं। प्रतिबंध होने के बावजूद भी वहां हलका-फुलका प्रेम व्यापार चालू हो

जाता है। कोई लड़का इसलिए आगे खिसकने की कोशिश करता है कि उसकी मनमीता सामने बैठी आंखों से इशारे कर रही है। कोई लड़की बुढ़िया से झगड़कर इसलिए उठ खड़ी होती है कि उसे कोई देख ले कि वह कहां बैठी है ? किस रंग की साड़ी पहने है। इस भरी भीड़ में हलचल होती है, और उत्साह भरी जिन्दगी चलती है।

सेठ मोंगीराम के प्रयत्न से ही रामलीला का आयोजन होता है। दामोदर बाबू पुराने भक्त थे। उन्होंने इसका प्रारम्भ किया था। उस परम्परा को आगे बढ़ाने में सेठ जी का बड़ा हाथ है। वे वर्ष में एक माह के लिए भक्त शिरोमणी बन जाते हैं। पूरे महीने वे पीले वस्त्र धारण करते हैं। अन्न छोड़ देते हैं। फरारी लेते हैं। चंदा वसूलते हैं। रिहर्सल कराते हैं। रामायण पाठ के लिए विद्वानों की मंडली बुलाते हैं। जो लड़के राम, लक्ष्मण, सीता का पार्ट अदा करते हैं उन्हें वे ईश्वर के रूप में ही पूजते हैं। उनकी सेवा करते हैं। चरण दाबते हैं। रात-रात भर सिंहासन के पीछे खड़े होकर चंवर डुलाते हैं। इसीलिए आस-पास के इलाके में उनकी ख्याति है। वैसे बाकी ग्यारह महीने वे दुकान में बैठकर सोने-चांदी का धंधा करते हैं। ज़ेवरात रहन रखते हैं। सूद पर रुपये देते हैं। मैं उन्हें देखता हूं तो मन ही मन सोचता हूं कि इनके हमउम्र रावण का पाठ करने वाले गुप्ता मास्टर मर गये। जनक जी का रूप धारण करने वाले घोंघीराम अंधे हो गये। परशुरामी करने वाले शिव विलास बुढ़ापे के कारण अपंग हो गये। राजा दशरथ का काम करने वाले सुभग जी संन्यासी हो गये, किन्तु सेठ जी ज्यों के त्यों हैं। एक महीने की अटल भक्ति का ग्यारह महीने तक फायदा उठाते हैं।

पिछले वर्ष मैं रामलीला देखने गया था। उस दिन 'अंगद बसीठी' होनी थी। बेहद भीड़ थी। मैं भी उस भीड़ में शामिल हो गया। धक्का-मुक्की करता हुआ मंच के पास पहुंच गया। मेरा ध्यान जब मूर्तियों की ओर गया तो मैंने तुरंत उस लड़के को पहचान लिया जो राम बना था। उसके माथे पर सुनहरा मुकुट बंधा था। चेहरा सितारों से सजाया गया था। वह मखमली कामदार कोट पहने था। पीली धोती थी। धनुष-बाण धारण किये था। यही रूप देखकर तो उसकी जयजयकार होती है। हज़ारों स्त्री-पुरुष सिर नवाते हैं।

सस्वर रामायण का पाठ शुरू हुआ। शोर-गुल शांत होने लगा। किन्तु मैं उस लड़के के बारे में ही सोच रहा था जो इस समय अतिशय गंभीर बना हुआ था। वह विधवा ब्राह्मणी का एकलौता लड़का था। उसकी मां दुबली सी लम्बे कद की थी और सिमटी-सिमटी सी चला करती थी। पूनो-अमावस वह हमारे घर सीधा लेने आया करती थी। यह लड़का भी अपनी मां के साथ आया करता था। तब वह प्राइमरी स्कूल में पढ़ता था और बहुत गंदगी से रहता था। उसकी कमीज के कालर में नौ मन कीट जमी होती थी। नीले रंग की जांघिया फटी हुआ करती। हरदम नाक बहती रहती और वह

फुर फुर करता रहता। मां इसके पढ़ने के लिए हमारे छोटे भाइयों की किताबें मंगा करती थी। इसके एक बड़ी बहन भी थी। मां की तरह लम्बी। कम उमर में भड़कीली हो गयी। मां उसकी शादी के लिये मेरी चाची से अक्सर बातें किया करती। गरीब घर की लड़की को अच्छा वर मिलता कहां है? न दान न दहेज। और ये है कि रोज बांस की तरह बढ़ती जा रही है। बाद को वह लड़की बहुत होशियार निकली। उसने चुपके से एक दफ्तर के पड़ोसी बाबू से प्यार किया और चुपचाप शादी कर ली। जिस समय यह घटना घटी थी मुहल्ले की औरतें उस लड़की को चरित्रहीन साबित करने में अपना वक्त जाया करती थीं। किन्तु बाद को यह आग ठण्डी हो गयी थी। बाबू ने अपना ट्रांसफर करा लिया था और लड़की को लेकर चला गया था। मां शादी की चिंता से तो मुक्त थी किन्तु उसके मन में एक टीस बनी हुई थी। कहा करती—"ऐसी उतराई मेरी लौंडिया कि पैर पूजने का भी मौका नहीं दिया। बिना पैर पूजे तो मैं नरक में पड़ी रहूंगी।" बाद को लड़की ने भाई के नाम कुछ रुपये भेजने शुरू कर दिये थे। मां का विरोध भी शान्त होने लगा। रुपयों की मदद से राहत मिलने लगी थी।

अब मैंने उस लड़के की ओर फिर देखा। उसके चेहरे पर खास तरह की गरिमा थी। सोचा अब यह इण्टर का विद्यार्थी होगा। महीने भर रामलीला में काम करके साल भर की पढ़ाई का खर्च तो निकाल ही लेता होगा।

इस बीच रामायण की काफी चौपाइयों का पाठ हो चुका था। रावण मंदोदरी सहित अपने सिंहासन पर बैठ गया था। अभिनेता का डील-डौल रावण के व्यक्तित्व को उजागर करने में असमर्थ था फिर भी वह सीना तान कर चरित्र के साथ न्याय करने की कोशिश कर रहा था। मंदोदरि एक आंख की कानी थी। उसके गाल पिचके हुए थे और दो दांत बाहर की ओर निकले हुए थे। वह सिनेमाई अंदाज में रावण से सटकर बैठी थी। रावण के सिंहासन के नीचे मुंह में कालिख पोते कुछ राक्षस बैठे थे वे शराब पीकर उद्दंड होने का अभिनय कर रहे थे। एक ने अपने मुंह में मिट्टी का तेल भर रखा था और मशाल की लौ पर फूंक मारकर आग उगलने का अभिनय कर रहा था। इसी बीच अगद जी कूदते-फांदते रावण के दरबार में आ गये। मोंगीराम जी ने राम जी की जै बोली। फिर धर्म की, फिर सूर्यदेव की, फिर पृथ्वी माता की और फिर जगद्गुरु की। ऐसे में स्वाभाविक ही था कि रावण दरबार की ओर ध्यान बंट जाये।

उस दिन राम का अधिक पार्ट नहीं था। किन्तु उन्हें रात भर बैठना जरूरी था। मेरी नजर बार-बार उन पर पड़ती। वे उदासीन थे। वे ऊंघने लगते तो सेठ जी 'मूर्छा' से हिला देते और वे सचेत हो जाते। लक्ष्मण का पार्ट करने वाला लड़का बार-बार जमुहाई ले रहा था। राम बनने वाले लड़के के चेहरे पर वेदना के चिन्ह थे। वह इस तरह अपने अंगों का संचालन करता जैसे ऐंठन हो रही हो। रात के बारह बजे होंगे।

अंगद-रावण संवाद अपनी चरमसीमा पर था। थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि रामजी और सेठ जी मंच पर नहीं हैं। बगल में बैठे दो स्वयंसेवक आपस में खुश-फुश कर रहे थे। राम जी महाराज के पेट में बड़ी ज़ोर का दर्द उठा है। अन्दर मछली की तरह तड़प रहे हैं। मैंने बात सुन ली। सोचा गरीब का लड़का है आजकल जमकर रबड़ी और पूड़ी खाता होगा। रात भर जागना पड़ता ही है। अफरा लग गया होगा। ऐसा सोचकर मैंने अपना ध्यान फिर मंदोदरी की ओर किया। वह खास अंदाज से अंगद को चुपके-चुपके बिरा रही थी और लोगों के मनोरंजन का विकट कारण बन चुकी थी। किन्तु थोड़ी ही देर में कई स्वयंसेवक ग्रीनरूम के अन्दर हो गये। मैं शंकालु हो उठा। वह मेरे मुहल्ले का लड़का था, मुझे उससे मोह था। फिर पेट के दर्द की बात सुन ही चुका था। मैं पीछे वाली गली से पीली कोठरी को पार करता हुआ ग्रीनरूम में चला गया। ग्रीनरूम के सामने ही एक लम्बा बरामदा था। वहां पुराने जमाने की एक टूटी कुर्सी पड़ी थी। कुर्सी के पास ही दो जोड़ी टूटे तबले लुढ़क रहे थे और एक पेटी पड़ी थी। वह लड़का आराम-कुर्सी में पसरा पड़ा था। वह दोनों हाथों से पेट दबाये था और दोनों पैर एक दूसरे से लपेट कर दर्द सहने की ताकत बटोर रहा था। बावजूद भड़कीले मेक-अप के उसका चेहरा कांतिहीन होता जा रहा था। सेठ जी सोडावाटर की बोतल हाथ में लिए थे। मैं उसके बगल में खड़ा हो गया। लड़के ने तुरंत मेरा हाथ पकड़ लिया। मुझे लगा जैसे वह बहुत बड़े सहारे की तलाश में है। वह बोला—"अरे भइया मेरी जान निकली जा रही है।" मैंने दर्द का प्रकार पूछना चाहा था। तभी सेठ जी ने बात काटी और स्वयं अभिनय की मुद्रा में बोले—"अरे रे राघवेन्द्र जी महाराज···जय हो···ये सब रात्रि के जागरण से हो जाता है। सब ठीक हो जायेगा। अभी वैद्य को बुलाता हूं।" मैंने उनकी बात काटी क्योंकि उनके व्यवहार से मैं खीझ उठा था—"सेठ जी तुरंत किसी बड़े डॉक्टर को बुलवाइए।"

सेठ जी की आंखें तन गयीं। कुपित भाव से बोले—"वाह इस रूप में इन्हें अंग्रेजी दवा कैसे दी जायेगी। इन्हें जड़ी-बूटी वाली दवा दी जायेगी।"

मैं फिर झुंझलाया—"आप दवा में ऐसा भेद क्यों करते हैं। मैं तो कहता हूं इसे तुरत अस्पताल में भर्ती कर देना चाहिए। पता नहीं कैसा भयानक रोग हो।"

सेठ जी को लगा जैसे मैं दाल-भात में मूसलचन्द की तरह वहां उपस्थित हो गया हू। वे बोले— 'इसेऽऽ। अरे इस समय इन पर राम जी का लौछार है उन्हीं का मुकुट इनके सिर पर है। ये तो अपने आप ठीक हो जायेंगे।" उनकी हठवादिता देखकर मुझे अपनी झुंझलाहट पी जानी पड़ी—"ठीक है आप वैद्य जी को ही बुलाइए।"

सेठ जी ने एक ठिगने स्वयंसेवक को वैद्य जी के पास भेज दिया। उस लड़के की हालत खराब होती जा रही थी। किन्तु उस पर वातावरण का भारी दबाव था। वह अपने

घर में होता तो ज़रूर चीख-चीखकर चिल्लाता। हाथ-पैर पटकता। अपने दर्द का इज़हार तो करता ही। मैं सोचने लगा कि मामला गंभीर है। या तो इसके पेट की आंतें उलझ गई हैं या गुर्दों पर बुरा असर पड़ा है। उसकी व्यथा देखी नहीं गयी। सेठ जी और रामलीला कमेटी के लोग मेरी बात मानेंगे नहीं। मैंने उस लड़के से कहा—"तुम्हारी मां को ले आऊं।"

सेठ जी ने फिर मेरी बात काटी—"नहीं भाई साहब! राघवेन्द्र जी महाराज ठीक हो जायेंगे। कृपा करके आप उनका दिमाग खराब मत कीजिए।" सेठ जी की बात सुनकर मुझे लगने लगा कि आगे ये मेरी कुछ भी न सुनेंगे और तुरत ग्रीनरूम से बाहर करवा देंगे। मैं क्षुब्ध था अतः स्वयं ही ग्रीनरूम से बाहर आ गया। रामलीला देखने में मेरा मन नहीं लग रहा था। उस लड़के का दयनीय चेहरा आंखों के सामने घूम रहा था। ऐसा लगता मदद के लिए वह मुझे पुकार रहा है।

रामलीला देखने की इच्छा ही नहीं रह गयी थी। मैं भीड़ के पीछे चला गया। पान की दुकान से सिगरेट खरीदी। सिगरेट जलाते समय मैंने कहा भी—"ये रामलीला वाले उस लड़के की जान ले लेंगे।" पानवाले ने मेरी बात पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। मैं भीड़ से दूर कुएं की जगत पर बैठकर सिगरेट पीने लगा। मन तर्क पर तर्क कर रहा था। वह लड़का इतना डरता क्यों है? वह ढोंगी भक्तों को पहचान क्यों नहीं पाता? वह यह क्यों नहीं मान पाता कि वह राजा दशरथ का नहीं एक गरीब ब्राह्मण का लड़का है। इसी उधेड़बुन में मैंने पूरी सिगरेट जगत से रगड़ दी। ढेर सारी चिनगारियां उठीं और तुरंत हवा में बुझ गयीं। मैं पीछे वाली सड़क पर आ गया और अकेला घूमता रहा। रामायण का पाठ बराबर चल रहा था। किन्तु मेरे अन्दर तो उस गरीब लड़के का क्रन्दन ही कसक रहा था। मुझे याद नहीं कि उस सड़क के मैंने कितने चक्कर काटे। आक्रोशवश मैंने सोचा कि सीधे माइक के पास चला जाऊं और घोषित कर दूं कि अब रामलीला बंद। राम जी के पेट में असहनीय दर्द है। उसकी दवा होना ज़रूरी है। मैं फिर रामलीला मैदान की ओर चल पड़ा था।

दूर से ही मैंने मंच की ओर देखा। राम अपने आसन पर बैठे थे। दूर से मैं कुछ न समझ सका। सोचा वैद्य जी की दवा से फायदा हो गया होगा। कुछ तनाव कम हुआ। उस लड़के ने संवाद बोला। अब भी उसकी आवाज़ में कंपन था। गला टनक न था। करीब आध घंटे बाद रामलीला समाप्त हुई। ग्यारह आरतियों वाला थाल आया। गीत गा-गा कर आरती उतारी गयी। रुपयों का चढ़ावा चढ़ने लगा। भक्त किस्म के स्त्री पुरुष मूर्तियों के चरणों में माथा रखने लगे। मैं अपने घर वापस आ गया।

दूसरे दिन मैं दिन भर पड़ा सोता रहा। नींद में मैंने रामलीला के कई दृश्य देखे थे। पांच बजे शाम को मेरी नींद टूटी थी। जगने पर भी आलस सा छाया रहा। चाय

पीने के बाद मैं घूमने की गरज से स्टेशन की ओर मुड़ गया। चौराहे के पास पहुंचा ही था कि उस लड़के की मां मिल गयी। वह हड़बड़ाहट में थी और भागती हुई चल रही थी। मैंने पूछा—"कहां जा रही हो महराजिन ?"

वह रुकी नहीं। बोली—"मेरे बेटे की तबीयत बहुत खराब है।" यह कहते हुए वह काफी दूर निकल गयी और मैं उससे कोई बात न कर सका। सो चुकने के बाद भी मेरा मन हलका नहीं हुआ था। मंदगति से आगे बढ़ गया। स्टेशन के करीब पहुंचा तो देखा कि सड़क पर एक स्वागत द्वार बना है। सड़क के इधर-उधर सजावट के लिए बल्लियां गाड़ी जा रही हैं। जामुन और आम के पत्ते चारों ओर बिखरे हुए हैं। मैंने एक मोची से पूछा—'ये क्या हो रहा है ?"

"बाबू जी दो दिनों बाद राघवेन्द्र जी महाराज अयोध्या लौट रहे हैं। भरत मिलाप के लिए नगर की सजावट की जा रही है।" उसने कहा।

"ओह...समझा...मगर इतने पहले सजावट ?" मैंने पूछा।

"बाबू सिनेमाघर तक की सड़क सजेगी। टैम तो लगेगा न...जुलूस के लिए हाथी भी आ गये हैं...।" उसने कहा।

स्टेशन रोड पर मेरा एक दोस्त था जो एक साप्ताहिक अखबार निकालता था। कार्यालय खुला हुआ देखा तो मैं वहीं चला गया। मेल-मुलाकात के बाद चाय पी गयी। मैं सोच रहा था कि कल की घटना की न्यूज बनाकर दे दूं और सेठ मोंगीराम की खबर लूं। मैंने कहा—"अखबार के लिए मैं न्यूज़ लाया हूं।"

"क्या ?"

"रामलीला में राम का पार्ट खेलने वाला लड़का बीमार है और उसकी देख-रेख भी नहीं हो रही।" मैंने कहा।

पत्रकार मित्र ने कहा—"न्यूज पुरानी पड़ गयी।"

तभी एक दूसरे व्यक्ति ने कहा—"वह लड़का तो दोपहर को ही मर गया। भयानक पेट का दर्द उठा था...समझ ही में न आया...।"

"लड़का लापरवाही के कारण मर गया।"

"हाँ, आखिर में उसे अस्पताल ले गये थे। वहां जाते ही वह 'कोलैप्स' कर गया।"

"मगर उसकी मां तो मुझे अभी मिली थी ?"

"उसे बाद में सूचना दी गयी होगी।"

मैं मौन हो गया। क्योंकि मां को अभी तक पता नहीं था कि उसका बेटा मर गया है। मैं व्याकुल था। मां के साथ नाटक खेलने की क्या जरूरत थी ? वाह ! खूब

है ··· । अंधभक्ति क्या इन्सानियत से अलग कोई चीज होती है ? मैं बहुत देर तक दफ्तर में नहीं बैठ सका । वहां से उठकर मैं रामलीला मैदान की तरफ चल पड़ा । इस समय मेरे पैर काफी वज़नी हो गये थे ।

मैदान के पास पहुंचा तो देखा कि बहुत से लोग वहां इकट्ठे हैं । चारों ओर की गलियों से कोई न कोई आ रहा है । उस लड़के की मृत्यु चर्चा का विषय बनी हुई है । मैं सीधे ग्रीनरूम में घुस गया । दरवाजे से ही मैंने उस लड़के के शव को देखा । पास ही उसकी मां बेहोश पड़ी थी । उसकी मुठ्ठियां बंद थीं । दांत भिचे हुए थे । भीड़ के लोग दर्शन करके अब भी नतमस्तक हो रहे थे । पता नहीं इस मौत को वे किस रूप में स्वीकार कर रहे थे ?

रामलीला कमेटी के लोग व्यस्त थे । शवयात्रा की योजना बना रहे थे । अर्थी फूलों से सजाया जाना था । पूरे नगर भ्रमण का कार्यक्रम था । शव के पीछे लम्बा जुलूस होगा । लोग अपने आप इकट्ठे होने लगे थे । किन्तु मैं उन लोगों के बीच अपने को नहीं खपा सका । उस लड़के की मृत्यु का तमाशा नहीं देखना चाहता था । कतई नहीं । उसकी शवयात्रा अंधे जुलूस में बदली जा रही थी । वाह रे मेरे कस्बे के लोगो ! मैंने मन में ही यह वाक्य दोहराया और घर वापस लौट आया ।



मुट्ठी में बंद रेत : एक विवशता

तृप्ति कौशिक

बांसों के वन से
गुज़रती हुई हवा
अक्सर
अपने ज़ख्मों पर रोती है
और अचानक
एक प्यासी झील
किनारों के पार तक भर जाती है
कछारों में जमी
घुटनों-घुटनों काई के बीच
रातों रात
सरकण्डों का भरा-पूरा जंगल
खड़ा हो जाता है।

मैं महसूस करती हूँ
उनकी चिकनाहट पर
फिसलती तुम्हारी दृष्टि
सहसा
मेरी देह-यष्टि में
कुछ खोजने लगती है
विकल्प में मैं
मुट्ठी में बंद रेत
मुक्त कर देती हूँ



रंगों के कुंकुमे

राकेश

● अम्बर से टूटते !
धरती पर फूटते !!
रंगों के कुंकुमे !!!

●● टेसू की पीतिमा,
लालिमा गुलाबों की;
अग-जग में नाचती—
उर्वशी शवाबों की;

मौसमी मस्ती में—
लजीले होश गुमे !
रंगों के कुंकुमे !!

●●● दहके पलाश-पटल,
जगतीं मादक यादें;
विचुम्बित अधरों पर—
रति-पीड़ित फरियादें;

कसमसाती लतिका—
तरुओं की बाहु में !
रंगों के कुंकुमे !!

●●●● रसभरे दल-बादल—
उड़ रहे गुलालों के,
मृगयूथ किलक रहे—
मदभरे सवालों के;

चलो प्रकृति-क्रोड़ में—
उत्तर दे दूं तुम्हें !
रंगों के कुंकुमे !!

●

हास्य-व्यंग्य

अगर नारद जी जम्मू आते तो !

डॉ संसार चन्द्र

अगर नारद जी जम्मू आते तो वह दिन जम्मू के इतिहास में एक स्वर्णिम दिन होता। नारद-वीणा की प्रथम झंकार के साथ ही उषा देवी मुस्करा उठती, बहारें फूल बरसातीं और बादे-सबा अठखेलियां करती। शहर की दीवारों पर बड़े-बड़े मोटे अक्षरों में लिखा जाता "किस शेर की आमद है कि रण कांप रहा है"। जम्मू के रिवाज के मुताबिक हर छोटे बड़े लीडर का स्वागत इन्हीं शब्दों से किया जाता है। नारद जी तो एक नामी लीडर हैं, पूरे सिक्केबन्द।

जरा सोचिये कि इन हालात में नारद जी को जम्मू तशरीफ लाने में क्या एतराज हो सकता है ? वैसे भी जम्मू एक ऐतिहासिक नगरी है। भूस्वर्ग कश्मीर का प्रवेशद्वार है। वैष्णो देवी के दर्शनों के लिये भी यहीं से गुजरना पड़ता है। अब तो पाकिस्तान का खतरा भी टल गया है। सरहदें महफूज हो गई हैं। वैसे नारद जी छोटे-मोटे खतरों से बिल्कुल नहीं घबराते। वे तो जंगो-जदल के शायक हैं। यह अलग बात है कि वे स्वयं जंग में कूदने की तकलीफ गवारा नहीं करते केवल दूसरों को ही इस नेक काम की प्रेरणा देते रहते हैं।

खैर चाहे कुछ भी हो हमें नारद जी के जम्मू आने के सम्बन्ध में निराश नहीं होना चाहिये। जम्मू आने के लिये कोई परमिट नहीं लेना पड़ता। सच पूछो तो नारद जी वैसे भी परमिट प्रूफ हैं। कोई स्थान उनसे अगम्य एवं अगोचर नहीं, वे तो हरजाई हैं।

हां एक दिक्कत ज़रूर पेश आ सकती है। खुदानखास्ता अगर नारद जी इस सुन्दर नगरी को देखकर मोहित हो जायें और अपने कदीमी घुमन्तु पेशे को खैरबाद कहकर एक शान्त एवं संयत नागरिक की तरह यहां आबाद होने का फैसला कर लें तो मामला ज़रूर बिगड़ जायेगा। यहां एक नहीं अनेक नारद झख मार चुके हैं। वे टूरिस्ट के रूप में आये और टूरिस्ट के रूप में ही लौट गये, जम्मूवाल अथवा जमवाल नहीं बन सके। यही तो

जम्मू की खूबी है। खैर इससे नारद जी की सेहत पर कोई खास असर नहीं पड़ता। वे घर बनाने में विश्वास नहीं रखते। मिर्जा गालिब के अनुसार वे बेदरोदीवार का घर बनाने के कायल हैं। इस रमते राम को भला घर से क्या सरोकार। जब तक सौ पचास योजन की यात्रा नहीं कर लेते उन्हें खाना हज्म नहीं होता। वे अब तक जम्मू नहीं पहुंच पाये तो कोई बात नहीं। वे किसी समय भी बिना अल्टीमेटम के टपक सकते हैं। इसमें देर हो सकती है, अन्धेर नहीं।

मगर नारद जी के अब तक जम्मू न आने के सम्बन्ध में एक गहरा सवाल दिमाग में अनायास कौंधने लगता है। आखिर इतना अरसा नारद जी ने जम्मू को अपनी आमद से क्यों महरूम रखा है। चौबीसों घंटे भागदौड़ करने वाला और नाना प्रकार की लीलायें रचाने वाला यह रहस्यमय देवता जम्मू से अब तक क्यों गायब रहा है। चाहे कुछ समझ लीजिये मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि नारद जी को जम्मू से गहरा अनुराग है। जम्मू धर्म की नगरी है। मन्दिरों और देवालयों की नगरी है। नारद जी तो मानो धर्म के ही अवतार हैं। मन्दिरों और देवालयों में ही उनका भजन-कीर्तन चलता है। इसलिये नारद जी जहां भी विराजमान होंगे वे जम्मू आने के लिये जरूर बेताब होंगे। यदि संयोगवश चलते-फिरते, भागते-दौड़ते, नारद जी के कान में मेरी कमज़ोर आवाज़ पड़ जाये तो वे समझ लें कि जम्मू की यह हसीन नगरी कब से उनके दर्शनों के लिये तड़प रही है।

नारद जी के अब तक जम्मू न आने में एक राज़ और भी है। कोई ज़माना था जब सारे ब्रह्माण्ड में अकेले नारद जी का ही नाम गूंजता था। नारदवृत्ति एकमात्र उनकी ही विरासत थी। उस समय उनकी नारदीय कम्पनी का कोई दूसरा शेयर होल्डर पैदा नहीं हुआ था। मगर अब तो खुदा के फजल से घर-घर में नारद जन्म ले रहे हैं। आखिर नारद जी जम्मू आकर कौन सा ऐसा तीर मार लेते, जो नयी पीढ़ी के नारद नहीं मार सकते।

यद्यपि इस युग में नये नारद सिर निकाल रहे हैं फिर भी पुराने नारद का सिक्का अभी मन्द नहीं पड़ा। पुराने नारद के ठाठ निराले हैं। रामायण-महाभारत युग से लेकर आज तक अकेले नारद जी ने ही जो-जो गुल खिलाये हैं, उनको कौन भूल सकता है। राम से लेकर रावण तक, कृष्ण से लेकर कंस तक, शिवजी से लेकर भस्मासुर तक किस-किस को इन्होंने चक्कर नहीं दिये। घूमने और घुमाने में तो आपका रिकार्ड है। शास्त्र-पुराण आपके बेजोड़ कारनामों से भरे पड़े हैं। देवासुर संग्राम से लेकर छोटी-मोटी घरेलू छेड़-छाड़ में भी आपका हाथ होता है। इसीलिये आपने राजा से लेकर रंक तक सबको अपनी दयादृष्टि से निहाल किया है। इसी कारण आप इस युग के पक्के सोशलिस्ट माने जाते हैं। नई खोजों के आधार पर सोशलिज्म को जन्म देने वाले आप ही पहले भारतीय मुनि हैं।

जम्मू नगरी भी तो सोशलिज्म का गढ़ है। इसलिये आपका जम्मू पधारना एक लाजमी अमर है।

जम्मू आने पर नारद जी नगर की उन्नति को देखकर जहां खुश होते वहां थोड़ी देर के लिये पुराने राजा-महाराजाओं की याद उन्हें उदास कर देती। वास्तव में नारद जी दरबारी जीव हैं। दरबार में बैठ कर अपने विश्व-भ्रमण के अनुभव तथा इधर-उधर की गर्मागर्म खबरें सुनना-सुनाना उनकी हाबी है। मगर राजे-महाराजे तो अब अतीत का विषय बन चुके हैं। अत: नारद जी की यह मुराद भला कैसे पूरी हो सकती है ?

जम्मू आने पर सबसे पहले नारद जी प्रैस-कान्फ्रेंस बुलाते जिसमें वे इतनी मुद्दत जम्मू न आने के संबंध में अपनी कैफीयत पेश करते। वे जोश भरे शब्दों में ऐलान करते कि उन्होंने जम्मू को कभी फरामोश नहीं किया। स्वर्ग में हों चाहे पाताल में वे जम्मू की तरक्की को हजार आंखों से देखते रहे हैं। जम्मू में रेल के उद्घाटन से लेकर मोटल की स्थापना तक में इन्हीं का हाथ रहा है। अंत में अखबार-नवीसों को आशीर्वाद देते हुये बताते कि खबरों का धन्धा चलाने वाले वही एकमात्र पहले व्यक्ति हैं। जब कोई ऋषि-मुनि इन्द्रासन प्राप्त करने के लिये तपस्या करने लगता था सबसे पहले इसकी खबर नारद द्वारा ही इन्द्र तक पहुंचती थी। अखबार-नवीसी नारदीय सम्प्रदाय का ही एक रूप है। अत: वे इस सम्प्रदाय पर पूरी तरह ईमान लायें तभी वे लोग एक कामयाब अखबार-नवीस बन सकते हैं।

जम्मू आने पर नारद जी देखते कि यहां के लोगों ने सामाजिक पहलू से भी बहुत उन्नति कर ली है। संसार के अनेक विशाल नगरों की तरह यहां भी नारद सभा का उद्घाटन हो चुका है। यद्यपि उद्घाटन के अवसर पर नारद जी उपस्थित नहीं थे मगर इस सभा को नारद जी का पूरा आशीर्वाद प्राप्त है। यह उद्घाटन नारद जी की तस्वीर को सामने रखकर किया गया था। उस दिन से नारद सभा की कारवाही की रिपोर्ट उन्हें निरन्तर पहुंचती रहती है। नारद सभा की जिन्दादिली से जम्मू निवासियों के जीवन में एक अजब निखार आ गया है। आये दिन नारद-सभाई कोई न कोई शोशा छोड़ते रहते हैं। पिछले दिनों हमारे एक पड़ोसी साईंदास उनके चक्कर में बुरी तरह फंस गये थे। नारद पंथियों ने साईंदास का वह गुड्डा पीटा कि जम्मू वाले दंग रह गये। तब से नारद सम्प्रदाय को समझने के लिये साईंदास का किस्सा जानना जरूरी हो गया है।

साईंदास मूलत: पहाड़ के रहने वाले हैं। यद्यपि वे एक लम्बे अरसे से जम्मू में ही आबाद हैं मगर स्वभाव से अब तक भी भोले साईं बने हुये हैं। अपना चाट वेचने का धंधा है, जिसे गली के लड़के मुफ्त में ही चट कर जाते हैं। इस भोले साईं को दुनिया के किसी और शुगल में दिलचस्पी नहीं मगर एक छोटी सी आरजू है कि मरने से पहले उनका विवाह जरूर हो जाना चाहिये। दुर्भाग्यवश एक दिन यह खबर नारद सभा के अधिकारियों तक पहुंच गयी। फिर क्या था। नारद सभा की वर्किंग कमेटी तत्काल हरकत में आ गई और

इउने साइंदास का "मौजू" बनाने का निश्चय कर लिया। तत्काल साइंदास के विवाह की घोषणा कर दी गई। झट मंगनी और पट ब्याह। निमन्त्रण-पत्र बांटे गये। दूल्हा सजाया गया, बरात चली, सेहरा पढ़ा गया, वेदी में लावां-फेरे सब कुछ हुआ। जब बरात लौट रही थी तो अचानक शोर उठा कि दुल्हन भाग गयी है। परिणामस्वरूप दूल्हा मियां खाली डोली लेकर पोलीस चौकी पहुचे। पोलीस वाले नारद-पंथियों की साज़िश से पूरी तरह वाकिफ थे। उन्होंने रिपोर्ट दर्ज की और खाली डोली भी वहीं रख ली और कहा— साइंदास जी! आपके घर खाली डोली नहीं जायेगी। अब दुल्हन को खोजकर लायेंगे और डोली में बिठाकर ब जे-गाजे के साथ आपके घर छोड़ जायेंगे। नारद-सभाई तो तमाशा रचाकर लोट-पोट होते हुये घर चले गये मगर साइंदास जी को चैन कहां! उन्हें "बिन घरणी घर भूत का डेरा" लगता था। रोज़ चाट लेकर पोलीस चौकी जाते और सिपाहियों की सेवा करते, जो उनका नमक खाकर चटखारे लेते। कई बार कुछ मनचले नारद-सभाई साइंदास जी को कोई औरत दिखाकर पूछते कि वह तो उनकी बीवी नहीं। साइंदास जी कहते कि मैंने "पियछवि" देखी नहीं और शिनाखत के लिये विचोलों को लेने भागते। कभी कोई विचोला कहता, साइंदास! मैंने तुम्हारी बीवी को स्टेशन जाते देखा है। साइंदास कुछ नारद-पंथियों को साथ लेकर स्टेशन की ओर भागते। इस प्रकार आये दिन नारद-पंथ की सरगर्मियों से जम्मू में नारदपंथ का नाम गूंजने लगा है। इसलिये यदि भूले-भटके नारद जी कभी जम्मू का रुख करते तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य होता कि जम्मू की जलवायु नारद-सम्प्रदाय के लिये कितनी अनुकूल है। इस खुशी में नारद जी झट अपनी वीणा की मधुर तान छेड़ देते और परेडग्राऊंड में खड़े होकर ऐलान कर देते कि उनकी जम्मू यात्रा सफल हो गयी है।

अंत में दिन भर की भागदौड़ के बाद नारद जी भूख से बेहाल हो उठते। भाषण देते-देते उनके मुख से अनायास ये शब्द निकल पड़ते, "भूखे भजन न होत गोपाला" और वे तेज़ी से फत्तू चौगान में किसी देसी घी वाले हलवाई की ओर लपकते मगर वहां पहुंच कर उन्हें घोर निराशा होती कि वहाँ भी वनस्पति महाराज ने अपने झंडे गाड़ दिये हैं। तब वे खोये और पनीर की तलाश में दौड़ते क्योंकि जम्मू खोये और पनीर के लिये मशहूर है और पक्काडंगा इसका गढ़ माना जाता है। मगर वहां पहुंच कर पता चलता कि अब खोया या पनीर बनाना कानून की दृष्टि में घोर अपराध है। नारद जी इस बात को समझने में पूरी तरह नाकाम रहते। तब वहां के हलवाई उनकी बेबसी पर रहम खाकर उन्हें दूध पीने के लिये आमन्त्रित करते और सामने पतीले में रखे हुये दूध की ओर इशारा करते। इस पर नारद जी को स्वर्ग में बहती हुई दूध की नदियों की याद आ जाती और वह सोचते जम्मू के हलवाई भी हिन्दी के महाकवि बिहारी के पक्के चेले हैं जो दरिया को कूजे में बंद कर देते हैं। धन्य हैं जम्मू वाले!

बनजारा मेरा मन

हरीश गुलाटी

कुछ न कह पाने की
वेदना लिए यह मन!

भीगी आंखों में आस लिए
उर में शीतल उच्छ्वास लिए
वर्षा में जलती लकड़ी सा
जाने क्यों सुलगे तन
वेदना लिए यह मन!

भोर झरे हरसिंगार सा
विवश बना इक गुनहगार सा
ज्येष्ठ के आकाश जैसा
क्षुब्ध मन — आंगन
वेदना लिए यह मन!

बनजारा मेरा मन,
वेदना लिए यह मन!

आधुनिक हिन्दी कहानी में आर्थिक तनाव

कु० अनिल गोयल

आधुनिकता एक मूल्य है, जिसमें समसामयिकता का ऐतिहासिक संदर्भ भी है। इसके अन्तर्गत परम्परावहेलना, प्रयोगधर्मिता, वैज्ञानिक दृष्टि, व्यक्तिवादी जीवन पद्धति, मनोविश्लेषणवाद, प्रकृतवाद, युगसंत्रास, अस्तित्ववादी विचारणा, आदिमजीवन स्थिति, नये नैतिकमान, निम्न-मध्यवर्गबोध और विभिन्न ऊहापोह द्रष्टव्य हैं। अनुभूति के स्तर पर 'नई कहानी' बदलते हुये सामाजिक जीवन की पहचान की कहानी है जिसमें विशेष रूप से व्यग्रता, घुटन, कुण्ठा, आस्था, अनास्था, आक्रोश, बेबसी, जटिलता एवं अनर्गलता का स्वर उभरा है।

'नई कहानी' मूलतः आचरण के प्राचीन मूल्यों को नकारती है जिसका समर्थन करते हुये राजेन्द्र यादव 'एक दुनिया समानान्तर' में लिखते हैं—"मानवता, राष्ट्रीयता, सत्य, नैतिकता, धर्म और प्राचीन गौरव के इन छलावों के प्रति आस्थावान होना गलत है—ये शब्द अव्यावहारिक हैं, अवैज्ञानिक हैं, रूढ़ियां हैं···· डार्विन, फ्रॉयड और मार्क्स की त्रिमूर्ति ने बहुत पहले ही इन रूढ़ियों के चिथड़े उड़ा दिये थे ···· ।" आज कहानी का व्यक्ति-स्वातन्त्र्य-मूल्य अस्तित्ववाद से प्रभावित है अतः वह नवीन मूल्यों का अन्वेषण कर रहा है एवं प्राचीन आचरण सम्बन्धी मूल्यों का विघटन। इस विघटन का कारण है द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका, राष्ट्र का बंटवारा, साम्प्रदायिक दंगे, एक उद्देश्यहीन भटकन (बेकारी, बेरोजगारी आदि के कारण) जिसे डॉ० हरदयाल यूं अनुभव करते हैं—"स्वातन्त्र्योत्तर-काल सामान्यतः मोहभंग का काल रहा है। क्योंकि स्वाधीनता ने एक आम आदमी में जिन आशाओं को जगाया था उसमें से अधिकांश अपूर्ण रही हैं बल्कि जीवन में कशमकश बढ़ गई है, क्योंकि हम सामन्ती अर्थव्यवस्था वाले समाज से निकलकर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था वाले समाज में इस प्रकार संक्रमित हो रहे हैं कि पुराने मूल्य तो नष्ट

होते जा रहे हैं किन्तु पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के मूल्य सहज अस्तित्व में नहीं आ पा रहे हैं, हां, उसके दुर्गुणों ने हमें अवश्य आक्रान्त कर लिया है। हम उसके दबाव को अनुभव कर रहे हैं। फलत: पिछले लगभग बीस वर्षों में हिन्दी का कहानीकार वर्तमान व्यवस्था की कटु आलोचना करने से प्रारम्भ करके समग्र निषेध तक पहुंच गया है।''

नई कहानी में भौतिक मूल्यों को ही मानव मूल्यों के विघटन का प्रमुख कारण माना गया है। व्यक्ति की असहाय अवस्था का कारण धन की कमी है। आर्थिक सुदृढ़ता व्यक्ति को टूटने से बचा सकती है। दूधनाथसिंह का 'स्वर्गवासी' सिफारिश जुटा सकने पर सम्भवत: इस प्रकार स्वर्गवासी न होता। वह बेईमानी के प्रति असम्पृक्त है किन्तु पुन: नौकरी लग जाने पर सत्यनिष्ठ बनने का कोई प्रयत्न भी नहीं करता। आर्थिक आधार पर लिखी गई कहानियों में बेकारी, सिफारिश और अनुशासनहीनता को चित्रित किया गया है। भीष्मसाहनी की 'चीफ की दावत', अमरकान्त की 'डिप्टी कलक्टरी', जितेन्द्र की 'टूटा पत्ता', शानी की 'दिन', कमलजोशी की 'जीवनचक्र' तथा विजय चौहान की 'एक बुतशिकन का जन्म' इसी प्रकार की कहानियां हैं।

मार्क्सवाद के प्रभाव और युग की आवश्यकता के कारण भौतिक मूल्यों की अवस्थिति भी इन कहानीकारों में है -- विशेषकर अज्ञेय में। अज्ञेय ने धन की आवश्यकता को समझा है। 'शत्रु' शीर्षक कहानी में वे स्पष्ट कहते हैं कि ''देशी-विदेशी का प्रश्न तब उठता है, जब पेट भरा हो। सबसे पहला शत्रु तो यह भूख है। पहले भूख को जीतना होगा, तभी आगे सोचा जा सकेगा ।'' समाज की समस्त भावनाओं, परम्पराओं तथा नैतिक मान्यताओं एवं उनके विविध अंगों का नियमन समाज की आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप ही होता है—यही आर्थिक व्यवस्था मनुष्य के जीवन की नियामक है। इसी आर्थिक व्यवस्था के अस्तित्व के कारण समाज में दो वर्ग स्वत: ही आ गये हैं। प्रथम वर्ग में समाज के वे व्यक्ति सम्मिलित हैं जो अपनी सूक्ष्म एवं महत आशा, आकांक्षाओं को अर्थ के माध्यम से पूर्ण करने में समर्थ हैं और द्वितीय वर्ग में, वह अवशिष्ट समाज सम्मिलित है जो इन आकांक्षाओं को पूर्ण करने का साधन बनता है। शोषण की इसी स्थिति को कहानीकार यशपाल ने व्यंग्य के द्वारा व्यक्त किया है। 'आदमी या पैसा' शीर्षक कहानी में पेट के लिये कुकृत्य करने की मजबूरी की अभिव्यक्ति की गई है। झरना कहती है, ''टके से ही संतोष होता है बाबू ···· पेट भरता है तो टका चाहिये ···· बाबू, आदमी साथ नहीं सोता, उसका पैसा साथ सोता है।''

आर्थिक परिस्थितियों की विषमता का सामना न कर सकने के कारण मनुष्य पतित मार्ग को स्वीकारने में नहीं सकुचाता है। उसके जीवन एवं शरीर को गतिमान रखने के लिये भोजन तो सर्वप्रथम उपलब्ध होना चाहिये। ऐसी स्थिति में एक मनुष्य दूसरे का भोजन बलात् छीनने को बाध्य हो जाता है। धर्मवीर भारती की 'भूखा ईश्वर' में एक स्त्री

अपने मृतपति के मुख से रोटी का टुकड़ा निकालकर अपने क्षुधातुर पुत्र को खिलाने में संकोच नहीं करती है क्योंकि उसके मृत पति की क्षुधा से उसके जीवित एवं होनहार बालक की क्षुधा अधिक करुण है। पुत्र के वात्सल्य ने मानव की समस्त दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर क्षुधा को शान्त करने का मार्ग खोज निकाला। नारी की दृष्टि में अपने पति की अपेक्षा पुत्र का जीवन, परिस्थितिवश, अधिक मूल्यवान बन गया। दूसरी तरफ आर्थिक तनावों के कारण ही सारी भावनाए खत्म हो जाती हैं। उषा प्रियम्वदा की 'पैरम्बुलेटर' कहानी में कालिन्दी के मन में पैरम्बुलेटर के प्रति मोह था किन्तु बच्चे के अस्वस्थ होने पर धन की आवश्यकता पड़ती है और वह उसे बेचने के लिये स्वत: पति को दे देती है।

कमलेश्वर की कहानियों में भी आर्थिक संघर्ष के कारण व्यक्ति निरन्तर टूट रहा है। कमलेश्वर आधुनिक परिवेश में व्यक्ति के टूटने का सबसे बड़ा कारण आर्थिक जर्जरता को ही मानते हैं। 'राजा निरबसिया' का जगपती अपनी पत्नी को ही एक प्रकार से बेच देता है। 'गर्मियों के दिन' में भी इसी आर्थिक संघर्ष का चित्रण उपलब्ध है। भौतिक मूल्य व्यक्ति को तोड़ने में और भी अधिक सहायक हो रहे हैं, इसीलिये राजेन्द्र यादव ने इनका विरोध किया है। यादव की दृष्टि में "मनुष्य की सत्यनिष्ठा में अर्थमूल्य ने प्रश्नचिन्ह लगा दिये हैं।" आज का मनुष्य अपनी सहायता करने वाले व्यक्ति को ही 'चूना लगाता' है अथवा नमस्कार से भी बच जाना चाहता है। राजेन्द्रयादव के मतानुसार प्रेम और प्रेमविवाह की असफलताओं के कारणों में भी धनी-निर्धन, मालिक-नौकर, अभिजात्य-पिछड़े वर्ग का संघर्ष मूल कारण है। यह संघर्ष आर्थिक समानता के आधार पर ही समाप्त हो सकता है। औद्योगिक और सामन्तवादी प्रवृत्ति पर यादव ने जिन कहानियों में व्यंग्य किये हैं उनमें से 'जहां लक्ष्मी कैद है' तथा 'टूटना' प्रमुख कहानियां हैं। धन के कारण पिता पुत्री का विवाह नहीं करता अथवा परस्पर विरोधी संस्कार तथा आर्थिक विषमता प्रेम विवाह में दोनों पक्षों को तोड़ने लगती है। अस्तित्व का खतरा भी भौतिक मूल्यों एवं वैज्ञानिक प्रगति ने ही उत्पन्न किया है।

आज परम्परागत सामाजिक मूल्यों के विघटन के अनेक कारणों में से एक है आर्थिक संकट की वह स्थिति जिसने अनेक प्राचीन मूल्यों की जड़ें हिला दी हैं। स्वातन्त्र्योत्तर भारत की इस समस्या ने वर्षों से चली आ रही सयुक्त परिवार की परम्परा के विघटन का खतरा पैदा कर दिया है। महानगरों में संयुक्त परिवार का यह परम्परागत मूल्य लगभग समाप्त हो चुका है। जब व्यक्ति अपने ही बोझ से दबा जा रहा हो तब भला वह अपने परिवार के प्रति अपने दायित्व को निभाने की बात कहां तक सोच सकता है। शहरी लोग चाहे इन गले-सड़े मूल्यों को छोड़कर अपनी मशीनी ज़िन्दगी में रम गये हों किन्तु गांव के लोग अभी तक इनसे जुड़े हैं। इस संदर्भ में डॉ॰ रामदरश मिश्र की कहानी 'चिट्ठियों के बीच' उल्लेखनीय है। कहानी का नायक शहर में नौकरी के लिये रह रहा है और अपनी

तनख्वाह का अधिकांश भाग उसे गांव में परिवार के भरण-पोषण के लिये भेजना पड़ता है। वह जानता है कि उस लम्बे चौड़े परिवार से कट कर ही वह अपने बच्चों को आदमी बना सकता है अतः वह निश्चय करता है कि उसे—"मां-बेटा, भाई-भाई, पति-पत्नी के बीच हॉइफन निकालकर कॉमा लगाना है। सुखी होने का यही रास्ता है। ...तमाम सम्बन्धों से गुंथे हुय लम्बे परिवार को ढोना पुराना बोध है, टूटा हुआ मूल्य है।"

स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी व्यक्ति को अपनी विपदाओं से मुक्ति प्राप्त नहीं हुई है, उसकी विपदाएं एवं चिन्ताएं प्रतिपल बढ़ रही हैं। 'अभियोग' कहानी में अमृतराय ने इस पर प्रकाश डाला है। सामन्ती और औद्योगिक मूल्यों के विरोधी धर्मवीर भारती 'गुल की बन्नो' में आधुनिक सामाजिक व्यवस्था का चित्रण प्रस्तुत करते हुये स्पष्ट करते हैं कि आज भी किन्हीं परिस्थितियों एवं परिवेशों में नारी को पति द्वारा दासी समझा जाता है, जब घर में ही इस दास प्रथा का अन्त नहीं हुआ तो समाज में कैसे शोषक और शोषित का भेद मिट सकता है। 'आदमी का गोश्त' में भारती स्यार के माध्यम से शोषित वर्ग की तस्वीर खींच देते हैं—"ये लोग कहीं आदमी होते हैं, भूख में सूख-सूख कर मर जाने वाले, गुलामी में घुट-घुट कर मिट जाने वाले कहीं आदमी होते हैं"। अमरकान्त की कहानी 'जिन्दगी और जोंक' में जिजीबिषा का चित्रण बड़ा मार्मिक बन पड़ा है। असहाय रजुआ अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये नाना प्रकार के कार्य करता है। वह निम्नवर्ग की नारियों से गलियों तथा घाट के किनारे छेड़खानी करता है, एक पगली को साथ रखना चाहता है, किन्तु सफल नहीं होता। अन्त में वह बीमार पड़ जाता है। कहानीकार उसकी जिजीविषा का चित्रण इस प्रकार करता है—"उसके मुख पर मौत की भीषण छाया नाच रही थी और वह ज़िन्दगी से जोंक की तरह चिपका था—लेकिन जोंक वह था या ज़िन्दगी? वह ज़िन्दगी का खून चूस रहा था या ज़िन्दगी उसका"? यह एक चिरन्तन प्रश्न है जो आज तक अनुत्तरित है।

भौतिक मूल्यों का विरोध प्रायः सभी कहानीकारों ने किया है। भौतिक मूल्य सर्वग्राही और नाशकर हैं। इसीलिये आर्थिक समानता के सिद्धान्त के प्रतिपादन का प्रयत्न किया गया है, किन्तु आधुनिक कहानीकार ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का मार्ग प्रायः कम अपनाया है। आर्थिक संघर्ष ने व्यक्ति को तोड़ने में, पारिवारिक सम्बन्धों में और नारी की मुक्ति में सहायता पहुंचाई है। किसी समय हमारे जीवन का यह मूल्य रहा है "घर का पुरुष चाहे एक आना कमा कर लाये उससे परिवार का एक धर्म बनता है, परम्पराएं और संस्कार बनते हैं। स्त्री का धन अस्पृष्य है। उससे परिवार में कुसंस्कार जन्म लेते हैं...।" किन्तु आज यह मूल्य नितान्त अर्थहीन हो चुके हैं। आज के युग में स्त्री हो या पुरुष उनके पारस्परिक सम्बन्ध, परिवार तथा समाज में उनकी स्थिति—उनकी आर्थिक स्थिति पर ही निर्भर करती है। विष्णु प्रभाकर की कहानी 'ठेका' में लेखक ने दिखाया है कि किस

प्रकार आज के इस अर्थ पर आधारित समाज में पति प्रेम भी चल सकता है और अभिसार भी; और वह भी स्वयं पति की इच्छा से। आर्थिक संकट से त्रस्त आज का पुरुष स्वयं यह चाहता है कि उसकी पत्नी का बड़े-बड़े लोगों से परिचय हो क्योंकि वह जानता है कि आज के समाज में पति की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने में उसकी पत्नी की इस सामाजिकता का विशेष हाथ है। लेकिन जिस दिन पत्नी उससे पूछे बिना उसके अफसर से मिलने चली जाती है उस दिन उसका दबा हुआ पौरुष हुंकार कर उठता है और तब नैतिकता के वह सभी परम्परागत मूल्य उसके सामने आ जाते हैं जिनकी ओर उसने पहले कभी ध्यान नहीं दिया था। किन्तु जब दूसरे ही क्षण उसकी पत्नी ठेके की स्वीकृति ला उसके मुंह पर दे मारती है तो उसका सारा क्रोध बह जाता है। ठेके की स्वीकृति पाकर प्रसन्नता से झूम उठना इस बात का द्योतक है कि आज के जीवन में परम्परागत नैतिक मूल्य कितने खोखले एवं बेमानी हो चुके हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि आज आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप ही व्यक्ति अपनी मूल्य-दृष्टि बदलने के लिये विवश है।

आज लोग भीड़ में भी अपने को अकेला महसूस करने लगे हैं जिसके कारण व्यक्ति निरन्तर टूटता जा रहा है। कभी विपदाओं के बोझ से तो कभी खुद के 'काम्पलेक्सेज' से ही। आज का हर काम पेशा है और हर व्यक्ति पेशेवर—वह किसी भी वर्ग से सम्बन्धित क्यों न हो। शरदजोशी की 'रोटी और घटी का सम्बन्ध' में व्यवसायी लेखक की मनोदशा चित्रित है जो हर समय डाकिये का इसलिये इन्तजार करता है क्योंकि उसके पारिश्रमिक का चेक आने वाला है। ऐसी स्थिति में स्वल्प वेतन वाला आदमी बराबर अपनी दयनीय स्थिति पर हंसता है, क्योंकि उसके सामने असंख्य प्रश्न मुंह फैलाये सुरसा की तरह खड़े हैं—मां है, पिता है, पत्नी है, बच्चे हैं आदि-आदि। मन्नू भंडारी की कहानी 'सजा' से द्रष्टव्य है कि नौकरी से हटाकर, उसके खिलाफ मुकद्दमा चलाकर चाहे आज पिता को सजा नहीं मिलती हो, लेकिन इस बीच उसका पूरा परिवार तो सजा पा जाता है। 'रानी मां का चबूतरा' में गुलाबी भले ही चुड़ैल, कर्कशा और गंदी आदतों की समझी जाये लेकिन वह तो कमजोर तथा भूखे बच्चों के इन्तजाम में जूझ रही है और 'क्षय' कहानी की कुन्ती भी तो बाप की दवाई तथा भाई की पढ़ाई हेतु पैसा जुटाने के लिये ही दिन-रात ट्यूशन करती है तथा अपने समस्त शौक भूलकर स्वयं प्रतिपल टूट रही है।

समाजवादी स्कूल के कहानीकार भौतिक मूल्यों पर सर्वाधिक बल देते हैं। उन्होंने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर आर्थिक वैषम्य के चित्र प्रस्तुत किये हैं। इन चित्रों के माध्यम से उन्होंने शोषित और सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति का भाव जगाया है। यशपाल ने इस भौतिकता को 'मोटर वाली कोयले वाली' में अभूतपूर्व ढंग से चित्रित किया है—"यह मोटरवाली और कोयलेवाली सब एक है। इनका देवता पैसा है, प्रेम नहीं।" आज पैसा तो सारे युग की मांग है परन्तु मनुष्य इस पैसे की खातिर सारे

आध्यात्मिक मूल्य छोड़कर अनैतिक मूल्य अपना रहा है और उसकी आर्थिक विपन्नता ने ही उसे चोरी, घूसखोरी, फरेब तथा अन्य कुकृत्यों की तरफ प्रवृत्त किया है। व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई अपनी कहानी 'सड़क बन रही है' में सरकारी कार्यपद्धति पर चुटीला व्यग्य करते हुये कहते हैं—"इमारत से बंगला प्रकट होना तो स्वाभाविक है, पर सड़क के पेट से बंगला पैदा होना चमत्कार है—भैंसे के पेट से कुत्ता पैदा होने की तरह। ······अनाथालय में से हवेली पैदा हो जाती है।" आगे चोर बाजारी करने पर सरकारी रुख की चर्चा करते हुये लेखक कहता है—"—१० किलो अनाज वाला जेल जा रहा है। १०० ट्रक चोरी से बेचने वाला अटारी में बेखटके रहता है। पांच रुपये घूस वाला पकड़ा जाता है और पांच लाख पकड़ने वाले को 'डिसमिस' करा देता है।"

निर्मल वर्मा इन आर्थिक समस्याओं को 'लन्दन की रात' में उठाते हुये पैसे के लिये विदेश गये हुये युवकवर्ग की मनोदशा का चित्रण करते हैं। तीन दिन तक एक कारखाने में जाकर भी उन विदेशियों को नौकरी नहीं मिल पाती, क्योंकि वे काली चमड़ी वाले हैं। कहानी का नायक जेल जाते-जाते बच जाता है। वह होटल में घुस कर खाने का आर्डर तो दे देता है, किन्तु उसके पास बिल चुकाने को पैसे नहीं होते। वह मित्रों और परिचितों के पैसे से जीवित रहता है। मोहन राकेश के मतानुसार—मानव व्यक्तित्व को बेकारी, गरीबी और आर्थिक असमानताएं तोड़ डालती हैं, वहीं स्थिति 'जख्म' लगाती है और मनुष्य उस 'मलबे का मालिक' बन जाता है जिसपर स्वयं उसका भी अधिकार नहीं। उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। उसे भय होता है कि मित्र समझते हैं कि बेकारी के कारण वह उनसे चिपका रहता है। तब वह अपने अहं की तृप्ति यह कहकर कर लेता है कि—"तुम समझते हो कि इसी वजह से कल मैं तुमसे चिपके रहना चाहता था? ··— पर खातिर जमा रखो, नौकरी न रहने पर भी मैं दस आदमियों को खिला सकता हूं।"

वस्तुत: औद्योगीकरण के ऊहापोह भरे जटिल एवं सत्रासपूर्ण वातावरण में विभिन्न आयामों को पार करती हुई हिन्दी कहानी ने युगबोध से पूर्ण टक्कर लेकर जीवन की विभिन्न मनोदशाओं एवं विकटतम स्थितियों को स्वर दिया है तथा उन सभी आर्थिक विपन्नताओं एवं विसंगतियों का चित्रण किया है जिनसे स्वतन्त्रता परवर्ती समाज जूझ रहा है। शहरों में बसी हुई तथा औद्योगिक विकास में रमी हुई जनता के लिए "सबसे बड़ी चीज दुनिया में पैसा है, पोजीशन है। बाकी सब ढकोसला है, बकवास है"। ठीक इसी का चित्रण करने में आज का कथाकार व्यस्त है।



खोखले एहसास के कन्धों पर टिकी शाम

अशोक कुमार

हर ढलती शाम को
क्षितिज पर फैले
सिंदूरी अंगों के सामने खड़ा
मैं
सन्नाटे के बोझ से
बहुत झुक जाता हूं
झुक कर अपने को बचाने को कोशिश
एक मजबूरी है
क्योंकि मशीनी पुर्ज़ की भांति
घिसघिस कर बेकार हुआ
मैं
सन्नाटे और शोर किसी भी अवस्था में
फिट नहीं हो पाता।
विषमताएँ काले साये बनकर
बढ़ती हुई; और बढ़ती हुई
मुझे दबोचे डालती हैं,
जिजीविषा का आग्रह
मासूम, मौन कब्रों पर
फूल खिला देता है।
आगे बढ़कर
ढलती शाम का आंचल
गले लगा लेता हूँ
मगर पौ फटने की
एक अंतहीन प्रतीक्षा
दीमक बनकर
मुझे और खोखला बनाने लगती है
मुर्दा एहसास के कन्धों पर टिकी शाम
दूर
दूर
दूर होती जाती है।

पुस्तकें और पुस्तकें

●

नई कहानी के सशक्त हस्ताक्षर सुरेन्द्र अरोड़ा की कहानियों में एक सहजता होती है जो पाठक को अनायास बांध लेती है। 'आबनूस' में बारह कहानियां संकलित हैं। यह कहानियां आधुनिक जीवन के विभिन्न आयामों को रेखांकित करती हुई भूख, संत्रास और बदलते भौतिक मूल्यों को नये सन्दर्भों में उजागर करती हैं।

सुरेन्द्र लेखक रूप में एक तटस्थ दर्शक का सा भाव लेकर कहानी कहते हैं। उनकी यह अदा कहानी को और भीनिजी रंग दे देती है। निम्नमध्यवर्ग का चित्रण करने में इन्हें दक्षता प्राप्त हुई है। 'इंतजार' कहानी में से यह पंक्तियां द्रष्टव्य हैं, "अभी उसे दो घंटे ! नहीं, नहीं, दो युग और इंतजार के सलीब पर लटकना है।" इंतजार के सलीब पर लटकना आज के मानव की नियति है सो वह उसे भोग रहा है। लेकिन यह सब कब तक चलेगा ? कब तक हम 'आबनूस' को छलते रहेंगे या कि फिर कब तक 'परछाइयों' के साथ मन-बहलाव करते रहेंगे ? इस 'मरीचिका' से छुटकारा पाकर हमें उन क्षणों को 'तलाश' करना होगा जिन क्षणों में हम व्यक्ति को इकाई के रूप में नहीं 'व्यक्ति' के रूप में प्रतिष्ठित कर सकेंगे। 'कैलेण्डर', 'आबनूस', 'मन के दायरे' और 'छोटी छोटी बातें' संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानियां हैं।

---

१. आबनूस (कहानी-संग्रह) लेखक : सुरेन्द्र अरोड़ा प्रकाशक : भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली; प्रमुख वितरक : सन्मार्क प्रकाशन, १६, यू० बी० बंग्लो रोड, दिल्ली—११०००७; मूल्य : ५-५० रुपये ; पृष्ठ : १०२ ; आकार : क्राऊन

'दिल्ली कब्र बन गई' यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की ऐतिहासिक कहानियों का नवीनतम संग्रह है। 'चन्द्र' ऐतिहासिक कहानियों के सिद्धहस्त लेखक हैं, प्रस्तुत संग्रह की कहानियां इस बात को प्रमाणित करती हैं। 'दिल्ली कब्र बन गई' शीर्षक कहानी इस संग्रह की सबसे सशक्त कहानी है। जिस तैमूर ने दिल्ली को कब्र बनने पर मजबूर किया वही तैमूर इस बात को स्वीकार कर लेता है कि "दिल्ली दोज़ख से भी ज्यादा खौफनाक हो गई है"। इस 'दोजख' से अंततः मृत्यु-भय के वशीभूत होकर तैमूर को प्रस्थान करना पड़ता है। प्रस्तुत कहानी ऐतिहासिक कथा में आध्यात्मिकता का समावेश किए हुए है। राष्ट्रीय-एकता के उन्नत स्वर 'चन्द्र' की अधिकांश कहानियों में सुने जा सकते हैं।

सत्रह संग्रहीत कहानियों में 'मृत्यु-संगीत', 'गोरा हट जा' और 'आघात' विशेष प्रभावी हैं।

●

प्राप्ति स्वीकार

१. पाहुन

लेखक : रमेश भारती; प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली / मूल्य : बारह रुपये; पृष्ठ : १९२ ; आकार : डबल क्राउन.

२. आगे बढ़ो

लेखक : स्वेटमार्डन

प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली ; मूल्य : चार रुपये ; पृष्ठ : ९६

आकार : क्राऊन.

दिल्ली कब्र बन गई

लेखक : यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ; प्रकाशक : भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली—३२ ; आकार : क्राऊन ; मूल्य : दस रुपये ; पृष्ठ : १६०.

अकादमी डायरी

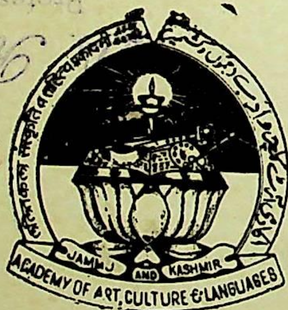


- १९ जुलाई १९७५ को सायं सात बजे स्थानीय गांधी भवन में 'नया मोड़ नई सोच' शीर्षक के अन्तर्गत एक कहानी गोष्ठी का आयोजन किया गया। विभिन्न सामाजिक बुराइयों पर करारा व्यंग्य तथा बदली हुई समसामयिक परिस्थितियों को रेखांकित करते हुए सर्वश्री पुष्कर नाथ, मोहन यावर, मालिक राम आनन्द और किशोरी मनचन्दा ने अपनी कहानियां पढ़ीं।

- २२ जुलाई ७५ को रामनगर (जम्मू प्रदेश) में एक 'रूरल मुशायरा' का एहतमाम किया गया जिसमें सर्वश्री वेद पाल 'दीप', रामलाल शर्मा, यश शर्मा, कुलदीप सिंह जिंद्राहिया तथा परस राम 'पूर्वा' प्रभृति कवियों ने भाग लिया।

- स्वतंत्रता-दिवस की पूर्व संध्या पर १४ अगस्त १९७५ को जम्मू से लगभग १६ किलोमीटर दूर रणवीरसिंह पुरा में एक 'रूरल मुशायरा' किया गया। स्वतंत्रता-दिवस की महिमा का गुणगान करते हुए नागरिकों को उनकी जिम्मेदारियों के प्रति सचेत किया सर्वश्री मानसिंह भार्गव, विश्वनाथ दिल, महेन्द्र सिंह, हिम्मत सिंह ऋषि, भगतसिंह तथा कु० हरदीपकौर दीपाली इत्यादि ने।

- हिन्दी के सुप्रतिष्ठित साहित्यकार श्री द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण' के जम्मू आगमन पर उनके सम्मान में १९ जुलाई ७५ को एक प्रीति-गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें जम्मू के सन्मानित साहित्यकारों ने भाग लिया। इस गोष्ठी की अध्यक्षता श्री डी० सी० प्रशान्त ने की।



A Publication of
J & K Academy of Art Culture & Languages, Jammu.